प्रमपुष्पमाला का प्रथम पुष्प



# श्रावकों के बारह व्रत।

श्रीमद् जैनाचार्य पूज्यश्री १००८ श्री जवाहीरलालजी महाराजके सुशिष्य पण्डितवर मुनिश्री श्रीमल्लजी महाराज द्वारा विरचित



प्रकाशक—
शा. प्रेमराज गणपतराज
रंगवाला मारकेट,
अहमदाबाद



मूल्य ०-४-०

प्रकाशक
शा प्रेमराज गणपतराज
अहमदाबाद



वीरनिर्वाण सं २४६४
विक्रम सं १९९५
प्रथमावृत्ति २०००

मुद्रक
केशवलाल साकळचंद शाह
धी वीरविजय प्रीन्टींग प्रेस
रतनपोळ सागरनी खडकी
: अहमदाबाद :

# दो शब्द

इस जगत् में मनुष्य शरीर को पाकर जिसने सम्यक्त्व रूपी रत्न को नहीं प्राप्त किया उस का जन्म निरर्थक है यह आर्हत आगमका शुभ सन्देश है। सम्यक्त्वरूपी रत्न को प्राप्त कर के जो पुरुष श्रावको के बारह व्रतो को अङ्गीकार करता है वह अपने इस लोक तथा परलोक दोनो को कल्याणमय बनाता है। यह मार्ग केवल ज्ञानी तीर्थङ्करोद्वारा उपदेश किया गया है। पूर्व समय में आनन्द कामदेव आदि बहुत श्रावकोंने इस मार्ग को सेवन कर के अक्षय कल्याण को प्राप्त किया है। परन्तु आज कल इस को धारण और पालन करने वाले पुण्यात्मा जीव कम देखने में आते हैं। प्रथम तो मोह के उदय से आज कल इस मार्ग की ओर मनुष्यो की प्रवृत्ति ही नहीं होती है और यदि महापुरुषो के उपदेश तथा पुण्य के उदय से किसी की प्रवृत्ति होती भी है तो श्रावको के बारह व्रत और उन के अतिचारो की व्याख्या में व्याख्याताओं के मतभेद होने के कारण चित्त में सन्देह हो जाता है जिस से उस पुरुष का उत्साह गिर जाता है।

हमारे अहमदावाद निवासियो के परम सौभाग्य से श्रीमद् जैनाचार्य्य पूज्य श्री १००८ श्रीजवाहिरलालजी महाराज का अमदावाद में सवत् १९९६ के साल में चातुर्मास्य हुआ। पूज्य

श्री की सेवा में उन के सुशिष्य मुनिश्री श्रीमलजी महाराज भी सुशोभित थे। अत हमने मुनिश्री से शास्त्रानुसार निष्पक्ष दृष्टि से श्रावकों के बारह व्रतों की व्याख्या करने की प्रार्थना की। मुनिश्रीने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर के परिश्रम के साथ इस ग्रन्थ को तैयार किया। इस कार्य्य में पण्डित अम्बिकादत्तजी ओझा व्याकरणाचार्य का भी सहयोग था। फलत इस ग्रन्थ को मुद्रित कराकर जनता की सेवा में अर्पण करने का निश्चय किया गया। यद्यपि यह पुस्तक बिना कीमत भी बांट सकते थे तथापि ऐसा करने से पुस्तक का महत्त्व घट जाता है और जनता उसे बिना कीमत का समझकर लाभ नहीं उठाती किन्तु उस में उपेक्षा करती है इस लिये लागत दाम रख कर इस का प्रचार करने का निश्चय किया गया है। इस पुस्तक की कीमत के जो पैसे होंगे उनसे भी फिर कोई दुसरी उपयोगी पुस्तक छपाकर जनता की सेवा में अर्पण करने का विचार है।

श्रीसंघसेवक,

**प्रेमराज गणपतराज**

रतनपोल मारकेट अहमदाबाद

ॐ

# भूमिका

यह ससार दुःखका मूल है। जो प्राणी इसमें आसक्त हैं वे सभी दुःखी हैं। छोटे प्राणीसे लेकर बडे प्राणीतक सभीको आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ताप पीडा देते है। अग्निसे ताप ही उत्पन्न होता है शीत उत्पन्न नहीं होती इसीतरह इस जगत्से दुःखही उत्पन्न होता है शान्ति या सुख नही। बीजके समानही अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है, वटके बीजसे वटकाही अङ्कुर उत्पन्न होता है दूसरे वृक्षका अङ्कुर नही उत्पन्न होता इसीतरह इस दुःखमय ससारसे दुःखही उत्पन्न होता है सुख नही। अतः इस अनित्य तथा दुःखमय ससारसे सुखकी आशा करना मूर्खता है। साधारण मनुष्य समझता है कि राजा महाराजा और सेठ साहूकार आदि बडे बडे धनवान् इस जगत्में सुखी हैं परन्तु यह उसका भ्रम है अपने सुख दुःखका अनुभव अपने आपही किया जाता है दूसरा व्यक्ति दूसरेके सुख दुःखोका अनुभव नहीं करसकता है। धनवान्के सुख दुःखोका अनुभव करनेवाले धनवान् पुरुष ही हैं साधारण पुरुष नहीं, वे धनवान् चिन्ताके मारे व्यग्र देखे जाते हैं, कोई रोगी कोई शोकपीडित तथा कोई वैराग्निसे जलते हुए नजर आते हैं। वे पूछने पर अपनेको भारी दुःखी बताते हैं अतः न धनमें सुख है और न स्त्री पुत्र

और पशु आदिमें है क्योंकि यही मनुष्य जब किसी दिन उस परिस्थिति पर पहुँच जाता है जिसमें वह पहले सुखकी कल्पना करता था तब वह उससे भी सन्तुष्ट नहीं होता किन्तु उसमें सुख न देखकर उससे भी उच्चपद पानेका वह प्रयत्न करता है। जैसे मरुमरीचिकामें जल नहीं होता परन्तु दूरसे देखने पर वह चलती हुई अनेक तरङ्गोंसे युक्त जलसमुद्रके समान दीखती है उसीतरह संसारमें वास्तविक सुख नहीं है परन्तु अज्ञानान्ध प्राणियोंको वह सुखमय प्रतीत होता है। जैसे पित्त-रोगसे दूषित नेत्रवाला प्राणी स्वच्छ चन्द्रमा और शंखको पीतवर्ण देखता है इसीतरह प्रबल मोहके उदयसे मोहित प्राणी दुःखरूप संसारको सुखरूप देखते हैं। अतएव वे सुखकी प्राप्तिके लिये अनादि कालसे अविश्रान्त परिश्रम करते चले आ रहे हैं परन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। यदि मृगतृष्णाके जलसे प्यास बुझे तो सांसारिक वस्तुसे सुखपानेकी इच्छा भी पूरी हो, परन्तु मृगतृष्णाके पीछे दौड़नेपर जैसे गर्मीके कारण प्यास और अधिक बढ़ती है इसीतरह सांसारिक पदार्थोंके पीछे पड़ने पर उनमें और अधिक तृष्णाही बढ़ती है शान्ति या सुख नहीं मिलता है। वस्तुतः सांसारिक पदार्थोंसे सुख पानेकी इच्छा करना कुवैद्यकी चिकित्साके द्वारा रोगनिवृत्तिकी इच्छाके समान ही अनर्थका उत्पादक है अतः सांसारिक पदार्थोंमें सुखकी इच्छाको छोड़कर संसाररूपी भयङ्कर व्याधिको शान्त करनेके लिये विवेकी पुरुषको वीतरागके शास्त्रके शरणमें आना चाहिये।

वीतरागका शास्त्रही संसाररूपी व्याधिको शान्त करनेमें समर्थ अव्यर्थ महौषध है। इसके सेवनसे जीव इस दुःखमय संसार सागरसे पार होकर अक्षय और अनन्त सुखका भाजन होता है। सांसारिक दुःखोंकी शान्ति के लिये इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय भी इस त्रिलोकमें नहीं है। जगत् के समस्त पदार्थों को केवल ज्ञानके द्वारा हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष देखनेवाले परमकृपालु सर्वज्ञ प्रभुने सांसारिक तापसे पीडित प्राणियोंको दुःखसे मुक्त करके अक्षय मोक्षधाम में पहुंचाने के लिये आर्हत आगमोंका कथन किया है इस लिये जो प्राणी इस आगम के शरणमें आकर इसके उपदेशके अनुसार आचरण करते हैं वे अवश्य सब दुःखोंसे मुक्त होकर नित्य और सत्य सुखको प्राप्त करते हैं।

यद्यपि यह तीर्थङ्करोक्त आगम जीवको दुःखसे पार कर अक्षय मोक्षधाममें पहुँचानेवाला है यह ध्रुव सत्य है तथापि प्रबल पुण्यके उदय के बिना जीवकी इसमें श्रद्धा उत्पन्न होना संभव नहीं है अतः जिस प्राणीकी इस आगममें श्रद्धा भक्ति है उसे पुण्यात्मा समझना चाहिये।

इस तीर्थङ्करोक्त आगममें श्रद्धा रखनेवाले जो पुरुष उच्चकोटिके पुण्यात्मा हैं उनके लिये शास्त्रकारने पाँच महाव्रतो को पालन करनेका उपदेश किया है अतः शास्त्रानुसार पञ्चमहाव्रतोंको पालन करनेवाले महात्मा अनुकरणीय हैं उनके दर्शनसे

भी महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है परन्तु जो पुरुष मध्यम श्रेणीके हैं और गृहस्थ जीवनमें ही अपना काल व्यतीत करना चाहते हैं उनके लिये शास्त्रकारने श्रावकोंके बारह व्रतो के पालन करनेका आदेश किया है। अतः शास्त्रोक्त रीतिसे श्रावको के बारह व्रतोंको पालन करनेवाले पुरुषो की चित्तवृत्ति शुद्ध हो जाती है और वे काल पाकर साधुओंके पाच महाव्रतो के धारण करनेके योग्य भी हो जाते हैं। पश्चात् वे पाच महाव्रतोको धारण और पालन करके परमपद या मोक्षको प्राप्त करते हैं इसमें कुछभी सशय नहीं है।

जो पुरुष श्रावकोंके बारह व्रतोंको धारण करनेमें भी समर्थ नहीं हैं उन मन्द अधिकारियोके लिये शास्त्रकारने श्रावक होनेका उपदेश किया है अतः श्रावकपनेको धारण और पालन करके जीव काल पाकर श्रावको के बारह व्रतोके धारण और पालन करने योग्य भी हो जाता है फिर वह क्रमशः पच महाव्रतधारी होकर मोक्षगामी होता है।

जो पुरुष श्रावकपनको भी ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह ससारमें आसक्त है वह कदापि कल्याणका भाजन नहीं हो सकता है। अतः मनुष्यको श्रावक होकर बारह व्रतो को धारण करना चाहिये और इसके पश्चात् पञ्च महाव्रतधारी होना चाहिये यही कल्याणका मार्ग शास्त्रमें वर्णित है दूसरा नहीं।

## (श्रावककी व्याख्या)

"शृणोति जिनवचनमिति श्रावक" जो जिन भगवान्के वचनोंको सुनता है उसे 'श्रावक' कहते हैं। यद्यपि सभी ज्ञान वाले प्राणी जिन भगवान् के वचनोंको सुनते हैं तथापि जो श्रद्धापूर्वक तथा कल्याणका मार्ग समझकर जिन भगवान् के वचनों को सुनता है वही श्रावक है दूसरे नहीं। अतएव कहा है कि "योऽभ्युपेतसम्यक्त्वो, यतिभ्यः प्रत्यह कथा। शृणोति धर्मसम्बद्धा मसौ श्रावक उच्यते" जो सम्यक्त्वको स्वीकार करके प्रतिदिन साधुओंसे धर्मसम्बन्धी कथा श्रवण करता है उसे श्रावक कहते हैं। श्रावक बनने में किसी जाति या कुलका नियम नहीं है क्योंकि श्रावक बनना क्रिया के आधीन है अतः किसी जाति या किसी कुलका मनुष्य, श्रद्धा और भक्तिसे जिन वचन को सुनता हुआ श्रावक कहाजा सकता है। अतएव विद्वानोंने कहा है कि "अवाप्तदृष्टया दिविशुद्धसम्पत्, पर समाचारमनुप्रभाते। शृणोति यः साधुजनादतन्द्र स्त श्रावक माहुरमी जिनेन्द्राः" अर्थात् जो पुरुष दृष्टि आदि विशुद्ध सम्पत्ति को पाकर प्रतिदिन आलस्यरहित होकर प्रभातकाल में साधुओंसे उत्तम आचार को सुनता है। उसे जिनवर श्रावक कहते हैं।

विद्वानोंने सत्रह प्रकार के पवित्र भावों से युक्त पुरुषको श्रावक कहा है, वे पवित्र-भाव ये हैं–

(१) श्रावक स्त्रीमें आसक्त नहीं होता है।

(२) वह विषयों से इन्द्रियों को रोकता है।

(३) जो वस्तु अनर्थ का कारण है श्रावक उसमें लोभ नहीं करता है।

(४) श्रावक संसार में आसक्त नहीं होता है।

(५) श्रावक विषयों में उत्कृष्ट अनुराग नहीं करता है।

(६) श्रावक महारम्भ नहीं करता है यदि करे तो इच्छा-पूर्वक नहीं करता है।

(७) श्रावक गृहवास को पाशबन्धन के समान मानता है।

(८) श्रावक सम्यक्त्वसे विचलित नहीं होता है।

(९) श्रावक गडुरिका प्रवाह को त्याग देता है अर्थात् वह देखादेखी कोई बुरा कार्य्य नहीं करता है।

(१०) श्रावक शास्त्रके अनुसार सभी क्रियायें करता है।

(११) श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार दान आदि क्रियायें करता है।

(१२) श्रावक लज्जाको त्याग कर निरवद्य क्रियायें करता है।

(१३) श्रावक सांसारिक पदार्थों में राग द्वेष नहीं करता है।

(१४) श्रावक धर्म आदिके विचारमें मध्यस्थवृत्ति धारण करता है वह यह आग्रह नहीं करता है कि-" मैं जो कहता

हू वही सत्य है ” किन्तु जो सत्य है उसीको वह स्वीकार करता है ।

(१५) श्रावक, धन और स्वजन आदिके साथ सम्बन्ध रखता हुआभी इनको क्षणभङ्गुर जानकर इनमें आसक्त नहीं होता है ।

(१६) श्रावक दूसरेकी रुचि रखनेके लिये भोग उपभोग में प्रवृत्त होता है तीव्र रससे नहीं ।

(१७) जैसे वेश्या द्रव्यहरण करनेके लिये जारको सेवन करती है अनुरागसे नहीं इसी तरह श्रावक धर्माचरण करनेके लिये गृहवास करता है अनुरागसे नहीं ।

ऊपर कहे हुए १७ पवित्र भावोंसे युक्त पुरुष उत्तम श्रावक माना गया है ।

जो पुरुष धर्मरूपी रत्नको प्राप्त करता है वह चाहे किसी जाति वा कुलका हो श्रावक हो सकता है । अत. धर्मरूपी रत्नको प्राप्त करने के लिये शास्त्रमें २१ गुणोकी आवश्यकता बताई है । वे गुण ये हैं-

(१) ( अक्षुद्र ) जो पुरुष क्षुद्र नहीं किन्तु गम्भीर आशयवाला और सूक्ष्म रीतिसे वस्तुतत्त्वको विचार करनेमें समर्थ है वह धर्मरूपी रत्नको प्राप्त कर सकता है ।

(२) ( रूपनिधि ) जो पुरुष प्रशस्त रूपवाला है अर्थात् जिसकी पाँचही - [illegible] रीतिसे उदयको प्राप्त हैं वह

मनोहर आकृतिधारी पुरुष धर्मरूपी रत्नको प्राप्त कर सकता है। यद्यपि शास्त्रमें हरिषेण और हरिकेश आदि कुरूप पुरुषों को भी धर्मकी प्राप्ति कही है तथापि सम्पूर्ण अङ्गोका सद्भावही यहा मनोहर रूप माना गया है इसलिये कोई दोष नहीं है अथवा यह गुण सर्वत्र होनाही चाहिये यह नियम नहीं है। किन्तु २० गुणोंके होनेपर यदि यह एक गुण न हो, तो भी धर्मरत्नकी प्राप्ति होजाती है अत. यह गुण सार्वत्रिक नहीं है।

(३) (सौम्य) जो पुरुष स्वभावसे ही शीतल है जिसे देखकर लोगोंको विश्वास उत्पन्न होता है वह सौम्य पुरुष धर्मरत्नको प्राप्त कर सकता है। सौम्य पुरुष प्राय पाप कर्ममें प्रवृत्त नही होता है और मनुष्यगण सुखसे उसका आश्रय लेते हैं इसलिये सौम्य गुणको धर्मरत्नकी प्राप्तिका कारण माना है।

(४) (जनप्रिय) जो पुरुष परलोक को नष्ट करनेवाले कर्मोंका सेवन नहीं करता है तथा दान आदि शुभ क्रियायें करता है वह सब लोगोंका प्रिय होता है अत उसे जनप्रिय कहते है वह पुरुष ही धर्मरत्नका भाजन होसकता है।

(५) (अक्रूर) जिसका चित्त, क्रूरता यानी निष्ठुरताके कारण मलीन नहीं है उसे अक्रूर कहते है वह धर्मरत्नको प्राप्त कर सकता है परन्तु जो पुरुष क्रूर और दूसरेके दोषोंको ढूंढता है वह नहीं प्राप्त कर सकता है।

(६) (भीरु) जिन कर्मोंके सेवन से यह लोक तथा परलोक नष्ट हो जाते हैं उन अधर्ममय कर्मोंसे जो भय करता है तथा कारण होनेपर भी निःशङ्क होकर अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होता है वही पुरुष धर्मरत्नको प्राप्त कर सकता है।

(७) (अशठ) जो पुरुष दूसरेको ठगने में निपुण है, उसे शठ कहते हैं, वह किसीका विश्वासपात्र नहीं होता अतः जो पुरुष दूसरे को ठगने आदि कार्य्योंसे दूर रहता है वह अशठ कहलाता है वह पुरुषही धर्मरत्नका अधिकारी होता है।

(८) (सदाक्षिण्य) जो अपना कार्य्य छोडकर दूसरेके कार्य्य करनेमें बहुत प्रसन्न रहता है वह सदाक्षिण्य कहलाता है, ऐसे पुरुषकी कौन सेवा नही करता है ? वही पुरुष धर्म-रत्नका भाजन होता है।

(९) (लज्जावान्) जो पुरुष पाप कर्मकी वार्तासे भी लज्जित होता है तथा स्वीकार किये हुए कार्य्यको छोडनेमें समर्थ नहीं होता है वह पुरुष ही धर्मरत्न को प्राप्त कर सकता है।

(१०) (दयालु) धर्मका मूल दया है इसलिये जो पुरुष दुःखी जीवोंकी रक्षा करनेकी इच्छा रखता है वह दयालु है, वह पुरुष धर्मरूपी रत्न को प्राप्त कर सकता है।

(११) (मध्यस्थ) जो पुरुष राग द्वेषसे रहित होकर

मध्यस्थवृत्तिको धारण करता है वह सभीको प्रिय होता है वही पुरुष धर्मरूपी रत्न को प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

(१२) (सौम्यदृष्टि) जिसको देखकर किसीको उद्वेग उत्पन्न नहीं होता किन्तु सभीको उसमें प्रीति उत्पन्न होती है उसे सौम्यदृष्टि कहते है वह पुरुष धर्मरत्नका भाजन होता है।

(१३) (गुणरागी) जो पुरुष गम्भीरता और स्थिरता आदि गुणो में राग रखता है तथा गुणवान पुरुषोंको बहुमान पूर्वक देखता हुआ निर्गुणोकी उपेक्षा करता है वह गुणरागी है, वह पुरुष धर्मरूपी रत्नका भाजन हो सकता है।

(१४) (सत्कथ) एकान्त हितकारक धर्मकथा जिसको प्रिय लगती है तथा जो सच्ची बात कहता है उसे सत्कथ कहते हैं वह धर्मरत्न को प्राप्त कर सकता है।

(१५) (सुदीर्घदर्शी) पहलेही अच्छी रीतिसे विचार कर परिणाम में जिससे लाभ होता है ऐसे शुभ कार्योंको ही जो करता है उसे सुदीर्घदर्शी कहते है वह पुरुषही धर्मरत्नको प्राप्त करनेमें समर्थ है।

(१६) (विशेषज्ञ) जो पुरुष भली और बुरी बातों को अच्छी तरह जानता है वह विशेषज्ञ कहलाता है वह पुरुष धर्मरूपी रत्नको प्राप्त करनेमें समर्थ है। परन्तु जो गुणको दोष और दोषको गुण समझता है वह नहीं प्राप्त कर सकता है।

(१७) (वृद्धानुगत) जो पुरुष गुण को उपार्जन करने के लिये परिपक्व बुद्धिवाले वृद्धों की सेवा करता है वह पुरुष वृद्धानुगत कहलाता है, वही पुरुष धर्मरूपी रत्न का भाजन होता है परन्तु जो अपनी इच्छानुसार विचरता है वह नहीं।

(१८) (विनीत) जो श्रेष्ठ जनो को उचित मान देता है वह विनीत कहलाता है उस पुरुष के पास सब सम्पत्तिया शीघ्र ही आती है और वही धर्म रत्न का भाजन होता है।

(१९) (कृतज्ञ) जो पुरुष दूसरे के द्वारा किये हुए उपकार को भूलता नहीं किन्तु सदा स्मरण रखता है उसे कृतज्ञ कहते हैं उस पुरुष को गुणरत्न की प्राप्ति होती है परन्तु जो कृतघ्न है उसको धर्मरत्न की प्राप्ति नहीं होती।

(२०) (परहितकारी) जो स्वभावसे ही दूसरे का हित करता है उसे परहितकारी कहते हैं। सदाक्षिण्य पुरुष प्रार्थना करने पर दूसरे का हित करता है और यह स्वभावसे ही करता है यही इन दोनो का परस्पर भेद है। वह परहितकारी पुरुष धर्मरूपी रत्न को प्राप्त कर सकता है।

(२१) (लब्धलक्ष) जो पुरुष कठिन से कठिन धर्म कार्य्य को सुख से कर डालता है उस कार्य्यदक्ष पुरुष को लब्धलक्ष कहते हैं, वह पुरुष सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर सकता है।

ऊपर कहे हुए २१ गुणो से युक्त पुरुष श्रावक होता है। जैसे निर्मल वस्त्र के ---- ही रङ्ग चढता है मलिन वस्त्र के

ऊपर नहीं इसी तरह उक्त २१ गुणो से युक्त निर्मल आत्मा के ऊपर ही धर्म का रङ्ग चढता है अत' उक्त २१ गुणो से युक्त पुरुष ही धर्मरत्न का भाजन हो कर श्रावक होता है।

( श्रावको के दो भेद )

श्रावक दो प्रकार के होते हैं एक सम्यक्त्वधारी और दूसरे व्रतधारी। जो सम्यक्त्व को धारण करते हैं परन्तु श्रावको के १२ व्रतो को अङ्गीकार नहीं करते हैं वे सम्यक्त्व धारी है और जो श्रावको के बारह व्रतोको भी धारण करते है वे व्रतधारी कहलाते हैं।

( सम्यक्त्व के लक्षण और भेद )

"सम्यग् जीवस्तस्य भाव' सम्यक्त्वम्" जीव को सम्यक् कहते हैं और उस के प्रशम, सवेग श्रद्धा और आस्तिक्य आदि जो शुभ परिणाम हैं उन को सम्यक्त्व कहते हैं। अथवा जिस के बल से जीव को सर्वज्ञोक्त जीवादि नव तत्वो के ऊपर श्रद्धा उत्पन्न होती है उस को सम्यक्त्व कहते हैं। उस सम्यक्त्व के कई भेद होते हैं। किसी अपेक्षा से सम्यक्त्व दो प्रकार का होता है एक व्यवहार सम्यक्त्व और दूसरा निश्चय सम्यक्त्व। कुगुरु, कुदेव, और कुमार्ग को छोडकर सुगुरु, सुदेव और सुमार्ग को स्वीकार करना व्यवहार सम्यक्त्व है और जिस से ज्ञान विशुद्ध होता है वह आत्मा का शुभ परिणाम निश्चय सम्यक्त्व है। किसी अपेक्षा से सम्यक्त्व के पाच भेद है--

(१) (क्षायिक सम्यक्त्व) मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय इन तीन प्रकृतियो के क्षय से जो आत्मा में शुभ परिणाम होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

(२) (औपशमिक सम्यक्त्व) दर्शन मोहनीय की ऊपर कही हुई तीन प्रकृतियो के उपशम से आत्मा मे जो परिणाम होता है उसे उपशमसम्यक्त्व कहते हैं।

(३) (क्षायोपशमिक सम्यक्त्व) मिथ्यात्व कर्म के क्षय और उपशम से तथा सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के उदय से जो आत्मा में परिणाम उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

(४) (वेदक सम्यक्त्व) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में वर्तमान जीव जब सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम पुद्गल के रस का अनुभव करता है उस समय के उस के परिणाम को वेदक सम्यक्त्व कहते है।

(५) (सास्वादन सम्यक्त्व) उपशम सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व की ओर जाता हुआ जीव जबतक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं करता है तबतक के उस के परिणाम को सास्वादन सम्यक्त्व कहते है।

इसी तरह सामायक और प्रतिक्रमण आदि जिनोक्त क्रियाओं को अनुष्ठान[illegible] कारक सम्यक्त्व है तथा उन में

रुचि रखना रोचक सम्यक्त्व है एव उन मे होने वाले लाभों को सभाओं में वर्णन करना दीपक सम्यक्त्व है इस प्रकार सम्यक्त्व के कई भेद होते है

जो उक्त सम्यक्त्व को धारण करता है वह सम्यक्त्व धारी श्रावक है और जो सम्यक्त्व को धारण कर के श्रावक के बारह व्रतो को भी अङ्गीकार करता है वह व्रतधारी श्रावक है। व्रतधारी श्रावक सम्यक्त्वधारी श्रावक से श्रेष्ठ है। व्रत धारी श्रावक के जो बारह व्रत होते हैं उनमें पहले के पाँच व्रत अनुव्रत कहलाते हैं साधुओं के पाच महाव्रतो की अपेक्षा ये छोटे हैं इस लिये ये अनुव्रत कहलाते हैं। बीच के तीन गुणव्रत कहलाते हैं और अन्त के चार व्रत शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

इन बारह व्रतो का स्वरूप जानकर इन का धारण और पालन किया जा सकता है परन्तु बिना जाने नहीं अत शास्त्रोक्त रीति से इनका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। परन्तु आज कल काल के प्रभाव से अथवा मतो की विचित्रता के कारण इन व्रतो के अर्थ में अनेको भेद हो गये हैं कोई व्रत तथा अतिचारो का अर्थ अन्य प्रकार से करता है तो दूसरा दूसरी तरह से करता है, यहाँतक कि इन के नामोंका भी परिवर्तन कर के लोग मनमाना अर्थ करते हैं।

एक सम्प्रदाय असतीपोषणता को असयतिपोषणता

कहता है और किसी भी असंयति जीव को सहायता देना पाप बताता है अतः व्रत ग्रहण करने की इच्छा करनेवाले श्रावकों का चित्त संशयग्रस्त हो कर व्रत धारण करने में समर्थ नहीं होता है।

इस त्रुटि को दूर करने के लिये मैंने हरिभद्री आवश्यक तथा पूज्यश्री के व्याख्यान की कॉपी की सहायता से इस पुस्तक को निर्माण किया है। इस में किसी भी सम्प्रदाय विशेष का पक्षपात न रखकर मध्यस्थ वृत्ति से व्रत तथा अतिचारों की व्याख्या की है। अतः भव्य जीव इस ग्रन्थ को मनन कर के व्रतो का ज्ञान प्राप्त कर उसे धारण और पालन के द्वारा आत्मोन्नति करेंगे यह पूर्ण आशा है।

लेखक—

## उपोद्घात

ससार में जितने प्राणी हैं वे सभी सुखको उपादेय और दुःखको हेय समझते हैं। छोटे जीवसे लेकर बडे जीव पर्य्यन्त सभी प्राणी निरन्तर दुःखकी निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति के लिये अनेकों प्रकार के उद्योग करते रहते हैं। कोई कृषि करता है कोई वाणिज्य करता है कोई धनवानोंकी सेवा करता है और कोई पशुओंका पालन करता है। इन कार्य्योंके द्वारा बिचारे दुःखी प्राणी दुःखसे अपने त्राणकी आशा रखते हैं। पिता दुःख निवृत्ति और सुखकी प्राप्ति के लिये जिस किसी तरह धन उपार्जन करके अपने पुत्र पुत्रिकाओंका पालन करता है और पुत्र पुत्रिकायें भी सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति के लिये अपने पिता माताकी सेवा करते हैं कोई सुखकी प्राप्ति और दुःखका नाश करने के लिये दारपरिग्रह करके सन्तानकी वृद्धि करता है तो कोई अपने बने बनाये घर दार और पुत्र आदिको त्याग कर सुखकी प्राप्ति के लिये वनचारी हो जाता है। कहनेका आशय यह है कि जगत् में प्राणियों के द्वारा भले या बुरे जितने कार्य्य किये जाते हैं वे सब सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति की आशासे ही किये जाते हैं परन्तु दुःखकी प्राप्ति और सुखकी निवृत्ति की आशासे नहीं। हमें सुख मिले यह सभीकी इच्छा है, इसमें किसीका मतभेद [illegible] सुख प्राप्ति के उपायोंमें

योंका मतैक्य नहीं है। एक प्राणी जिस कार्यको सुखकी प्राप्तिका कारण समझता है दूसरा उसे दुःखका कारण मानता है इस प्रकार समस्त प्राणियोंका उद्देश्य एक मात्र सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति होते हुए भी अपनी अपनी रुचि और विचारकी विचित्रताके कारण साधनोंकी विचित्रता देखी जाती है।

यद्यपि सुखके साधनोंमें मतवादियोंका एकमत न होनेसे कभी कभी समाजकी भारी क्षति होती है और प्रजाओंमें अशान्तिकी वृद्धि हो जाती है तथापि सभी साधन ऐसे नहीं हैं कोई साधन ऐसा भी है जिसमें किसीका मतभेद नहीं और अशान्तिका नाम निशान भी नहीं किन्तु शान्तिका महासागर आनन्दकी लहरोंसे परिपूर्ण है। वह सुखका साधन है अहिंसा। वेद पुरान कुरान बाईबल आदि आदि जितने धर्मग्रन्थ आज लोकमें प्रचलित हैं वे सभी एक स्वरसे इसका समर्थन करते हैं कोई भी इसमें मतभेद नहीं रखता है और अशान्ति की तो इसमें चर्चा ही कहां है? क्योंकि वह तो हिंसावृत्तिसे होती है अतः जहां अहिंसा है वहां अशान्तिका होना कैसे बन सकता है?।

शान्ति, सुख और मोक्ष एक ही हैं और अशान्ति दुःख तथा बन्ध भी भिन्न नहीं हैं। अतः जबतक अहिंसावृत्ति पूर्ण-रूपसे जीवमें न आवेगी तबतक उसे शान्ति सुख या मोक्ष मिलना कठिन नहीं किन्तु असम्भव है इसी तरह जबतक हिंसा वृत्तिका नाश न होगा तबतक अशान्ति दुःख या बन्धका

नाश भी असम्भव है। वस्तुतः शान्तिकी जननी अहिंसा ही धर्मकी कसौटी है। जो साधन या जो धर्म इस अहिंसा की कसौटी पर खरा उतरे वही शान्ति या सुखका साधन तथा उपाय है इतर नहीं हैं। जो साधन अहिंसाकी कसौटी पर खरा नहीं उतरता वह सुखका साधन नहीं किन्तु वह साधनाभास है उसे शान्तिका साधन मानना भ्रम है।

जगत् की समस्त नदियाँ जैसे साक्षात् या परम्परासे समुद्रमें मिलती हैं उसी तरह सभी सुखके साधन या धर्म अहिंसा में मिलते हैं। अतः जो साधन अहिंसा में न मिलकर इससे प्रतिकूल चलता है वह सुखका साधन नहीं किन्तु दुःख का कारण है। भ्रमवश उसे सुखका साधन मानकर जीव अनन्त कालतक दुःख महासागरमें दुःख भोगता रहता है। अतः सर्वसम्मत अहिंसा ही दुःखका नाशक और शान्तिका कारण है यह निर्विवाद है।

शास्त्रमें जो श्रमणोंके पञ्च महाव्रत कहे गये हैं उनमें मुख्य अहिंसा ही है शेष चार व्रत तो अहिंसाकी पुष्टि के लिये विधान किये गये हैं। जैसे खेतोंकी रक्षा के लिये बाड़ बनाई जाती है इसी तरह अहिंसा की रक्षाके लिये शेष चार व्रत धारण किये जाते हैं। इस प्रकार अहिंसाकी वृद्धि ज्यों ज्यों होती जाती है त्यों त्यों जीवमें शान्ति या सुखकी वृद्धि होती है और अन्तमें पूर्ण अहिंसा स्थापित होजाने पर जीव परम शान्ति या मोक्ष को प्राप्त करता है।

किसी ऊँचे प्रासाद या पर्वत पर चढने के लिये जैसे सीढी का होना आवश्यक होता है इसी तरह पूर्ण अहिंसाको प्राप्त करने के लिये जीवोंको अवान्तर साधनोंकी आवश्यकता होती है। अतएव शास्त्रकारोंने महान् परिश्रमके साथ जगदुपकारार्थ शास्त्रोंका निर्माण करके उसके द्वारा अहिंसा प्राप्त करने के लिये अवान्तर साधनोंका उपदेश किया है। उस शास्त्रीय उपदेश के अनुसार आचरण करता हुआ जीव क्रमपाकर अवश्य अहिंसाकी पूर्णता को अपने में स्थापित करके परमशान्तिका अनुभव करता है परन्तु इस कार्य्यमें प्रवृत्ति होना या न होना अपने अपने परिणाम के आधीन है।

परिणामोंकी विचित्रताके कारण अधिकारियोंमें भेद होता है अतएव कोई उत्तमाधिकारी और कोई मन्दाधिकारी होते हैं जो पुरुष उत्तमाधिकारी हैं और पूर्ण वैराग्य सम्पन्न प्रव्रज्याधारी हैं उनके लिये तो शास्त्रकारने पञ्चमहाव्रतोंका उपदेश किया है और जो मन्दाधिकारी हैं उनके लिये श्रावकोंके बारह व्रतोंका विधान किया है।

बारह व्रतोंका विधिवत् पालन करता हुआ जीव क्रम पाकर उत्तमाधिकारी होकर पञ्चमहाव्रतोंका आराधक हो सकता है और पञ्चमहाव्रतोंके आराधनसे वह मोक्ष या पूर्ण शान्तिको पाकर सदाके लिये दुःख रहित नित्य सुखका भाजन होता है।

जैसे गेहूं चने आदिकी उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि सत् क्षेत्रमें होती है इसीतरह श्रमणोंके पञ्च महाव्रत और श्रावकोंके

बारह व्रतोंकी उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि शुद्ध श्रद्धारूप क्षेत्रमें होती है। अतः श्रावकोंके बारह व्रत धारण करनेके पूर्व शुद्ध श्रद्धाको प्राप्त करना जीवको परम आवश्यक है क्योंकि इसके विना न तो बारह व्रतोंकी प्राप्ति ही होती है और न वृद्धि ही होती है। जैसे मकान पहाड या वृक्ष आदि पृथिवीरूप आधारके विना नहीं रहसकते इसीतरह श्रावकोंके बारह व्रत शुद्ध श्रद्धारूप आधारके विना नहीं रहते अतः बारह व्रत धारण करनेकी इच्छा करनेवाले जीवको बारह व्रत धारणके पूर्व शुद्ध श्रद्धा धारण करनेकी परम आवश्यकता है।

वह शुद्ध श्रद्धा, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, और सम्यक्त्वमोहनीयके क्षायक क्षयोपशम और उपशमसे जीवको प्राप्त होती है इस लिये जीवको पहले मिथ्यात्वादि प्रकृतियोके क्षयोपशम आदिके कारणोंका अन्वेषण करना चाहिये। मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंके क्षयोपशम आदिके कारण शुद्ध देव शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्म शास्त्रमें बताये गये हैं इसलिये शुद्ध श्रद्धाकी प्राप्ति चाहनेवाले जीवोंको शुद्ध देव शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्मकी प्राप्ति करनी चाहिये।

किसी भी वस्तुका स्वरूप जाने विना उसका ग्रहण या त्याग नहीं किया जासकता है इस लिये शुद्ध देव शुद्ध गुरु और शुद्ध धर्मका स्वरूप ज्ञान के लिये इनका शास्त्रोक्त लक्षण बताया जाता है। शास्त्रमें कहा है कि–

"अट्ठदस दोसरहिओ देवो, धम्मोऽवि निउणदयसहिओ।
सुगुरुवि बंभयारी आरंभ परिग्गहा विरओ।"

इसका अर्थ यह है कि–जिसमें अठारह प्रकारके दोष नहीं हैं वह शुद्ध देव है। वे अठारह प्रकारके दोष ये हैं–

(१) अज्ञान (२) क्रोध (३) मद (४) मान (५) लोभ (६) माया (७) रति (८) अरति (९) पाँच प्रकारकी निद्रा (१०) निन्दा (११) शोक (१२) असत् (१३) अदत्त (१४) ईर्ष्या (१५) इह लोकभय (१६) परलोकभय (१७) प्राणिवध (१८) क्रीडामसङ्ग। इन अठारह दोषोंसे वर्जित देव शुद्ध देव है।

इन दोषोंके क्रमशः स्वरूप बताये जाते हैं–

(अज्ञान) अनेकान्त वस्तुके एक अंशको स्वीकार करके दूसरे अंशो को सर्वथा निषेध करना 'अज्ञान' है।

(क्रोध) चित्तकी जिस बुरी वृत्तिसे उत्तेजित होकर जीव दूसरे प्राणीका वध और ताडन आदि निन्दनीय कार्य्य करता है वह 'क्रोध' है।

(मद) जाति या कुलके घमण्डको 'मद' कहते हैं।

(मान) अहंकारको 'मान' कहते हैं।

(लोभ) जो वस्तु अपने पास हो या न हो उसमें मूर्च्छा रखना 'लोभ' है।

(माया) दूसरेको ठगना 'माया' है।

(रति) रूप, रस और गन्धादि विषयोंमें अत्यन्त प्रेम रखना 'रति' है।

(अरति) जो वस्तु अपनेको प्रतिकूल प्रतीत हो उससे द्वेष करना 'अरति' है।

(निद्रा) सुखसे सोना और सुखसे जागना 'निद्रा' है।

(निद्रानिद्रा) जो आवाज आनेपर टूट जाती है वह 'निद्रानिद्रा' है।

(प्रचला) बैठे बैठे नींद आना 'प्रचला' है।

(प्रचलाप्रचला) घोडेकी तरह चलते फिरते नींद आना 'प्रचलाप्रचला' है।

(स्त्यानर्द्धि) दिनमें सोचे हुए कार्यको नींदमें ही कर-डालना 'स्त्यानर्द्धि' निद्रा है।

(निन्दा) दूसरेकी बुराई करना 'निन्दा' है।

(शोक) इष्ट वस्तुके वियोगसे उत्पन्न दुःखको 'शोक' कहते हैं।

(असत्) अनन्तधर्मात्मक अनेकान्त वस्तुको एकान्त बताना अथवा जो वस्तु जैसी नहीं है उसको वैसी कहना 'असत्' है।

(अदत्त) न दीहुई वस्तुको अपने स्वार्थके लिये लेलेना 'अदत्त' है।

(ईर्ष्या) दूसरेकी उन्नति देखकर मनमें जलना 'ईर्ष्या' है।

(इह लोकभय) इस लोकके भयको 'इहलोकभय' कहते हैं।

(परलोकभय) परलोकके भयको 'परलोकभय' कहते हैं।

(प्राणिवध) प्राणियो को दुःख देना या मारना 'प्राणिवध' है।

(क्रीडाप्रसङ्ग) किसी आश्चर्यजनक वस्तुको देखकर हास्यविनोद आदि करना अथवा खेलकूद आदि चित्तविनोदके विषयोंमें आसक्त रहना 'क्रीडाप्रसङ्ग' है।

ये ऊपर लिखे हुए अठारह दोष जिसमें न हों उस देवको शुद्ध देव समझना चाहिये।

इन अठारह दोषों की गणना इस प्रकारभी की जाती है, जैसे—(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय, (५) वीर्य्यान्तराय, (६) हास्य, (७) रति (८) अरति (९) भय (१०) जुगुप्सा (११) शोक (१२) काम (१३) मिथ्यात्व (१४) अज्ञान (१५) निद्रा (१६) राग (१७) द्वेष (१८) अव्रत। ये अठारह प्रकारके दोष हैं। इन से तथा पूर्वोक्त अठारह दोषों से रहित जो देव है उसे शुद्ध देव समझना चाहिये। इन अठारह दोषों से रहित कोई भी व्यक्ति शुद्ध देव कहा जा सकता है और वही शुद्ध धर्मका उपदेशक और तत्त्वदर्शी है। ऐसे देव में श्रद्धा रखना शुद्ध देव की श्रद्धा समझनी चाहिये।

उक्त अठारह दोषों से रहित वह शुद्ध देव जिस धर्मका उपदेश करते हैं वह धर्म दयामय धर्म है। अतएव धर्मका लक्षण बताते हुए शास्त्रकार लिखते हैं कि—"धम्मो-

वि निवुणदयसहिओ ” अर्थात् धर्म वही है जो उत्तम दया से युक्त है। अतः जिस अनुष्ठान या क्रिया में दया नहीं है वह धर्म कहलाने योग्य नहीं तथा उस के सेवन से जीवकी सांसारिक यातनाओं से मुक्ति नहीं होती है। दयारहित अनुष्ठान का नाम चाहे अपनी इच्छा से भले ही कोई धर्म रख दे परन्तु उस से जीवको त्राण नहीं प्राप्त हो सकता है। उक्त धर्म के लक्षण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दया ही धर्म की जननी है और वही धर्मरूपी वृक्षका बीज है इसलिये जहां दया नहीं वहां धर्म नहीं यह सिद्धान्त ही यथार्थ है।

यद्यपि धर्म दयामय होता है इस में कोई सन्देह नहीं है तथापि दया के अर्थ में कई मतवादियों की व्याख्यायें भिन्न भिन्न प्रकारकी है जिस से जनता में भ्रमकी वृद्धि हो कर दया के सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है अतः दया के विषय में यहां संक्षेप से कुछ लिखना अनावश्यक नहीं है।

“दय् दानगतिरक्षणहिंसादानेषु” इस धातु से ‘दया’ शब्द बना है इसलिये दुःखी जीवों को दान देना और रक्षा करना दया शब्द का अर्थ है यद्यपि दया शब्द का अर्थ धातुपाठ के अनुसार गति हिंसा और लेना भी हो सकते हैं तथापि वे अर्थ प्रचलित नहीं हैं किन्तु दान देना और रक्षा करना अर्थ ही प्रचलित है अतएव दया शब्दका पर्याय लिखते हुए अमरसिंहने—

अपने कोश में लिखा है कि-"कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्" अर्थात् कृपा दया और अनुकम्पा ये शब्द समानार्थक हैं। वस्तुतः जिस चित्तवृत्ति से प्रेरित होकर जीव दीन दुःखी प्राणियों पर अनुकम्पा करके उनको दान देता है और मरते जीवकी रक्षा करता है तथा स्वयं किसी जीव को नहीं मारता है उस चित्तवृत्तिको दया कहते हैं। वह चित्तवृत्ति ही अहिंसा की जननी है क्योंकि जिसकी चित्तवृत्ति दयामय नहीं है वह कभी भी अहिंसा धर्मका उपासक नहीं हो सकता है। अतएव प्रश्नव्याकरण सूत्रके प्रथम संवरद्वारमें शास्त्रकार लिखते हैं कि-"सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं" अर्थात् जगत् के समस्त प्राणियों की रक्षा रूप दया के लिये भगवान् ने इस आर्हत प्रवचन का उपदेश किया है। अतः आर्हत प्रवचनका उद्देश्य जगत् में दयामय धर्म का प्रचार करके प्राणियोंकी रक्षा करनाही है। तथा सूत्रकृताङ्ग सूत्र में कहा है कि-"दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं" अर्थात् भय पाते हुए प्राणी को अभय देना सब दानों में श्रेष्ठ है। इसका कारण यही है कि-अभयदान देना दयाका ही कार्य्य है जो निर्दय है वह ऐसा नहीं करता है दयालु पुरुष ही मरते प्राणी की प्राण रक्षा करते हैं अतः दयाकी मात्रा बहुत अधिक होने से अभयदान को सब ने श्रेष्ठ कहा है।

ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे में कहा है कि-"एगे आया

णुकंपेवि पराणुकंपेवि" अर्थात् कोई पुरुष अपनी भी दया करते हैं और दूसरेकी भी दया करते हैं। विवेकी पुरुष पाप से अपने आत्माको बचाते हैं यह उनकी अपने ऊपर दया करना है और दूसरे प्राणीको उपदेश आदि दे कर जो उस के द्वारा मारे जानेवाले प्राणी की रक्षा करते हैं वह उनकी दूसरे प्राणीपर दया करना है।

इस प्रकार स्वयं किसी प्राणी को न मारना और दूसरे प्राणी को न मारनेका उपदेश करना तथा हिंसक प्राणी के द्वारा मारेजाते हुए जीव की रक्षा करना, एव दीन दुःखी प्राणियो पर अनुकम्पा करके उनको सहायता देना ये सब दया कहे जाते ह। ऐसे दयामय धर्म का उपदेशक शुद्ध देवही हैं दूसरे नहीं।

जो पुरुष अपने आत्माका कल्याण करना चाहता है उस को ऐसे देव में श्रद्धा रखना परम आवश्यक है परन्तु विना सद् गुरु के ऐसे देव का उपदेश प्राप्त होना सरल नहीं है इस लिये उक्त शुद्ध देव का ज्ञान कराने के लिये सद् गुरु की नितान्त आवश्यकता है। अतः सद् गुरु का लक्षण बताते हुए शास्त्रकार ने लिखा है कि-" सुगुरु वि बभयारी आरभ-परिग्गहा विरओ" अर्थात् जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करता है और आरम्भ तथा परिग्रह से वर्जित है वह सद् गुरु है। वही सद्गुरु मनुष्य को शुद्ध देव का उपदेश दे कर उस में जीवकी श्रद्धा उत्पन्न करने में समर्थ है। वह सद्गुरु सर्वत्र

नहीं मिलते किन्तु शुद्ध सम्प्रदाय या शुद्ध गच्छ में ही मिलते हैं अतः शुद्ध सम्प्रदाय या गच्छ के ज्ञानार्थ उनका लक्षण लिखाजाता है।

जिस सम्प्रदाय या गच्छके रक्षक आचार्य और उपाध्याय आदि शास्त्रानुकूल आचरण करनेवाले, मिथ्यात्वमल रहित तथा सम्यग्ज्ञान आदिकी आराधना करते हैं एवं जहाँ शास्त्रविरुद्ध स्वच्छन्द बुद्धिसे सूत्र और उसके अर्थकी विपरीत प्ररूपणा नहीं की जाती है, तथा जिस गच्छमें ज्ञान, सयम, तप, दान, सम्मान, आहार विहार, आदि समस्त कार्य्य विधिपूर्वक गुरुकी आज्ञासे किये जाते हैं वह, शुद्ध गच्छ या शुद्ध सम्प्रदाय समझना चाहिये ऐसे शुद्ध सम्प्रदाय या शुद्ध गच्छमेंही सद्गुरु मिलते हैं और उनकी सेवासे जीवको शुद्ध देव और शुद्ध धर्ममें श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धा उत्पन्न होने पर जीव उत्तरोत्तर अपने आत्माकी उन्नति करता हुआ काल पाकर ससार सागरको पार करके सब दु खोंसे रहित अक्षय मोक्ष सुखका भागी बनता है।



# श्रद्धा या सम्यक्त्व

वस्तुके सच्चे स्वरूपको जानकर उसमें अटल विश्वास रखना और मिथ्या विचार या मिथ्या अर्थको एकान्त रूपसे छोड देना श्रद्धा, या सम्यक्त्व (समकित) कहलाता है।

इस सम्यक्त्वको धारण करनेवाला जीव, मिथ्यादृष्टि अज्ञानियोंके कुतत्त्वोंको नहीं मानता है तथा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी पुरुषों के द्वारा पूजित देव या गुरुको मोक्ष प्राप्ति के लिये वन्दना नमस्कार और दान सम्मान आदि नहीं करता है। सम्यक्त्वधारी पुरुष, विपत्तिमें पड़े हुए दीन दुःखी प्राणियो पर अनुकम्पा करके दान आदि के द्वारा उनकी सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझता है क्योंकि ऐसा करना अनुकम्पारूप गुण के लिये है दोपके लिये नहीं। अतएव शास्त्रका वाक्य यह मिलता है कि–

" सव्वेहिंपि जिणेहिं दुज्जयजियरागदोसमोहेहिं ।
सत्ताणुकंपणट्ठा, दाणं न कहिंचि पडिसिद्धं ॥ "

(छाया) " सर्वैरपि जिनैः, जितदुर्जयरागद्वेषमोहैः ।
सत्त्वानुकम्पनार्थं दानं न कुत्रचित् प्रतिषिद्धम् " ॥

अर्थात् दुःखसे जीतने योग्य राग द्वेष और मोहके ऊपर विजय पाये हुए सभी जिनवरोंने प्राणियोंकी अनुकम्पाके लिये दानका कहींभी निषेध नहीं किया है।

सम्यक्त्वधारी पुरुष मिथ्यात्वियोंके द्वारा पूजित देव और गुरु आदिको वन्दना नमस्कार और दान सम्मान आदि नहीं करते हैं यह जो पहले कहा गया है सो उत्सर्ग समझना

चाहिये क्योंकि इसके विषयमें आगे कहेजानेवाले छः प्रकारके अपवाद भी शास्त्रमें पाये जाते हैं। वे अपवाद ये हैं–(१) राजाभियोग (२) गणाभियोग (३) बलाभियोग (४) देवा भियोग (५) गुरुनिग्रह (६) और वृत्तिकान्तार

इन छः कारणोंके उपस्थित होनेपर सम्यक्त्वधारी पुरुषको यदि मिथ्यादेव और मिथ्यागुरु आदिको वन्दन नमस्कार और दान सम्मान आदि करना पडे तो कोई दोष नहीं है। अब इन छः अपवादोंका अर्थ किया जाता है। राजा महाराजा आदिके द्वारा जो दबाव दिया जाता है उसे राजाभियोग कहते हैं। तथा गण यानी समाजके द्वारा दिये हुए दबावको गणाभियोग कहते हैं। किसी बलवान् व्यक्तिके दबावको बला भियोग कहते हैं। एव देवी देवता आदिके द्वारा विवश किया जाना देवाभियोग है। अपनी जीविकाका निर्वाह न हो सकना वृत्तिकान्तार कहलाता है। माता पिता और ज्येष्ठ बन्धु आदि गुरजनोंकी आज्ञा अथवा साधुओंके ऊपर आये हुए कष्टको गुरुनिग्रह कहते हैं। इन छ. कारणोंके उपस्थित होनेपर सम्यक्त्वधारी पुरुषको यदि मिथ्यादृष्टि अज्ञानियोंको वन्दन नमस्कार और दान सम्मानादि करना पडे तो इससे उसके सम्यक्त्व में किसी प्रकारका दोष नहीं आता है।

जिस आचरणसे व्रतधारीके व्रतमें दोष उत्पन्न होता है उसे अतिचार कहते हैं। सम्यक्त्वमें दोष उत्पन्न करनेवाले अतिचार पाच प्रकारके कहे गये हैं वे ये हैं–

(१) शङ्का (२) काङ्क्षा (३) विचिकित्सा (४) परपापण्ड प्रशंसा (५) और परपापण्डसंस्तव।

इन पांच अतिचारोंके क्रमशः स्वरूप ये हैं-(१) सर्वज्ञ भगवान्के द्वारा कहे हुऐ पदार्थोंको अंशसे या सर्वथा मिथ्या होनेका भ्रम करना शङ्का नामक पहला, सम्यक्त्वका अतिचार है।

(२) जो दर्शन सर्वज्ञोक्त नहीं किन्तु अज्ञानियोंके द्वारा रचित हैं उनकी अंशसे या सर्वथा इच्छा करना काङ्क्षा नामक दूसरा अतिचार है।

(३) सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्रकी आराधना निष्फल नहीं होती किन्तु इससे जीवको परम शान्तिरूप फल प्राप्त होता है यह शास्त्रकी घोषणा है तथापि इसके फलमें सन्देह करना विचिकित्सा नामक तीसरा अतिचार है।

(४) जो शास्त्र सर्वज्ञ के द्वारा कथित नहीं है उनकी प्रशंसा करना परपापण्डप्रशंसा नामक चौथा अतिचार है।

(५) जो धर्म सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित नहीं हैं उनके साथ परिचय करना परपापण्डसंस्तव नामक पाँचवाँ अतिचार है।

ऊपर बताये हुए पाँच अतिचार सम्यक्त्वधारी पुरुष के सम्यक्त्व में दोष उत्पन्न करते हैं अतः इनका त्याग करना सम्यक्त्वधारियोंका कर्त्तव्य समझना चाहिये।

जिस आचार्य्य के द्वारा सम्यक्त्व धारण किया हो उनका नाम स्थापन करना चाहिये। नाम स्थापन के लिये यह कोष्टक छोड़दिया जाता है-

## श्रावकों के बारह व्रत

श्रावकों के व्रत बारह प्रकार के होते हैं। उन में पहले के पांच अनुव्रत और बीचके तीन गुणव्रत और पीछले चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। इनका स्वरूप और इनको धारण करनेका विधान शास्त्रानुकूल लिखा जाता है।

पहला व्रत ( स्थूलप्राणातिपातविरमण ) स्थूल प्राणियोंकी हिंसाका त्याग करना 'स्थूलप्राणातिपातविरमण' कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है—जगत् में दो प्रकार के जीव होते हैं एक स्थूल और दूसरे सूक्ष्म। जो जीव सर्व साधारण को जीवरूप से प्रतीत होते हैं वे स्थूल जीव हैं जैसे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय। ये सर्व साधारणको जीवरूप से प्रतीत होते हैं इसलिये ये स्थूल जीव हैं परन्तु जो सर्व साधारण के समझने में जीवरूप से प्रतीत नहीं होते किन्तु शास्त्रमर्मज्ञ तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुष के द्वाराही जीव प्रतीत होते हैं वे सूक्ष्म जीव हैं जैसे एकेन्द्रिय प्राणी।

स्थूल जीव जो द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय प्राणी हैं उनकी हिंसाको स्थूल हिंसा या "स्थूल प्राणातिपात" कहते हैं और सूक्ष्म एकेन्द्रिय प्राणीकी हिंसाको सूक्ष्म हिंसा या "सूक्ष्म प्राणातिपात" कहते हैं। यहाँ स्थूल

प्राणियोंकी हिंसा के त्यागकाही ग्रहण किया है परन्तु सूक्ष्म प्राणियोंकी हिंसाका नहीं अतः स्थूल प्राणियोंकी हिंसा न करना श्रावक के पहले व्रतका स्वरूप है। इसमें यह जाननाभी आवश्यक है कि-स्थूल प्राणियोकी हिंसा दो प्रकारकी होती है, एक सकल्पजा और दूसरी आरम्भजा। जो इच्छापूर्वक स्थूल प्राणी की हिंसा की जाती है वह सकल्पजा हिंसा है जैसे मास, चर्बी हड्डी, नख, दात, चमडा और रोम आदि के लिये लोग निरपराधी त्रस प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। यह हिंसा इच्छा पूर्वक की जाती है इस लिये यह सकल्पजा हिंसा कहलाती है। दूसरी हिंसा वह है जो इच्छा न होनेपरभी प्रसङ्गवश होजाती है जैसे रथ के भ्रमण से, तथा कृषिकर्म करते समय हल और कुदाल आदि के व्यापारसे एव पृथिवीके खनन करनेसे बहुतसे कीडे मकोडे आदि त्रस प्राणी मारे जाते हैं। इन प्राणियोंको मारनेकी इच्छा न होते हुए भी उक्त व्यापारोंके द्वारा ये प्राणी मारे जाते हैं अतः इनकी हिंसा आरम्भजा कहलाती है।

सकल्पजा हिंसा जान बूझकर इच्छापूर्वक की जाती है और आरम्भजा हिंसा इच्छा न होने पर भी लाचारी से हो जाती है यही इन दोनोका परस्पर भेद है।

गृहस्थ के द्वारा आरम्भजा हिंसा का त्याग सम्भव नहीं है क्योंकि आरम्भ के बिना गृहस्थका निर्वाह हो नहीं सकता है अत. निरपराधी प्राणीकी सकल्पजा हिंसाका त्याग ही

उसके व्रतमें लिया गया है परन्तु सापराधीकी एव आरम्भजा हिंसा का त्याग नहीं।

श्रमणोपासक पुरुष स्थूल प्राणीकी सङ्कल्पजा हिंसा को जीवन पर्यन्त छोड देता है परन्तु इसमें योग और करण की मर्य्यादा अपनी अपनी इच्छा पर निर्भर है। आनन्द श्रावकने दो करण और तीन योगसे सङ्कल्पजा हिंसा का त्याग किया था इस लिये अन्य श्रावकोंके लिये भी यही आदर्श उत्तम है।

यहा यह प्रश्न होता है कि–श्रावक स्थूल प्राणियों की सङ्कल्पजा हिंसा का ही त्यागी होता है आरम्भजा हिंसा का त्यागी नहीं होता ऐसी दशामें उसे स्थूल प्राणियोंकी हिंसासे विरत कैसे कह सकते हैं? यदि वह स्थूल प्राणियोंकी सङ्कल्पजा हिंसा के समान ही आरम्भजा हिंसाको भी छोड दे तो वह स्थूल प्राणियोंकी हिंसा का त्यागी हो सकता है और उसके व्रतको स्थूल प्राणातिपात विरमण कह सकते हैं परन्तु वह आरम्भजा हिंसाको छोडता नहीं है अत उसे स्थूल प्राणियोंका अहिंसक कहना ठीक नहीं।

इसका समाधान यह है कि। गृहस्थ जीवनमें कृषिकर्म और गृहनिर्माण आदि कार्य्य किये बिना निर्वाह नहीं हो सकता है और इन कार्यों के अनुष्ठान में आरम्भजा हिंसा हुए विना रह नहीं सकती है, इसका त्याग गृहस्थ के लिये अशक्य है इस लिये वह निरपराधी स्थूल प्राणियोंकी केवल सङ्कल्पजा

हिंसाको छोड देनेसे स्थूल प्राणियोंका अहिंसक माना जाता है अतः श्रावकोंके द्वारा स्थूल प्राणियोंकी आरम्भजा हिंसा के त्याग न होने परभी उस के प्रथम व्रतकी सिद्धि हो जाती है।

यहा दूसरा प्रश्न यह होता है कि–मनुष्य आरम्भजा हिंसा का त्याग न करता हुआ भी केवल संकल्पजा हिंसा के त्याग देनेसे यदि अहिंसक बन सकता है तो श्रावक स्थूल प्राणियोंका ही अहिंसक क्यों माना जाता है? उसे सूक्ष्म प्राणियोंका भी अहिंसक मानना चाहिये क्योंकि वह इच्छा-पूर्वक सूक्ष्म प्राणियोंकी भी हिंसा नहीं करता है ऐसी दशामें श्रावक के प्रथम व्रतके नाममें स्थूलपद रखनेकी भी क्या आवश्यकता है? किन्तु "संकल्पजसर्वप्राणातिपातविरमण" यह प्रथम व्रतका नाम होना चाहिये, तो इसका समाधान यह है कि–श्रावक इच्छापूर्वक ही पृथिवीकाय आदिका उपभोग करता है अतः वह सूक्ष्म प्राणियोंकी संकल्पजा हिंसा से निवृत्त नही है इसी कारण वह स्थूल प्राणियोंका ही अहिंसक माना जाता है सूक्ष्म प्राणियों का नहीं और उसके व्रतमें स्थूल पद जोड कर "वह सूक्ष्म प्राणियोंका अहिंसक नहीं है" यह स्पष्ट किया गया है।

श्रावक के पहले व्रतका स्वरूप बता दिया गया अब जिन कार्योंके अनुष्ठान करनेसे श्रावकोंके इस पहले व्रतमें दोष उत्पन्न होता है वे बताये जाते हैं। उक्त प्रथम व्रतमें दोष

उत्पन्न करने वाले अतिचार पाँच हैं–(१) बन्ध, (२) वध, (३) छविच्छेद, (४) अतिभार, (५) भक्तपानव्यवच्छेद।

(१) किसी प्राणिको रस्सी आदिसे बाधना 'बन्ध' कहा जाता है।

(२) किसी प्राणीको कोड़ा, चाबुक लाठी और डंडा आदिसे पीटना 'वध' है।

(३) किसी प्राणीके शरीरको आरा (करवत) आदिसे चीरना छविच्छेद कहलाता है।

(४) किसी प्राणीके कन्धे या पीठपर उसकी शक्तिसे अधिक भार चढाना अतिभार कहलाता है।

(५) किसी प्राणीको भोजन और पानी न देना भक्तपान व्यवच्छेद है।

(इन अतिचारोंके विषयमें पूर्वाचार्यों का विचार)

रस्सी आदिके द्वारा प्राणीको बाँधनेका दो भेद है, एक तो दो पैरवाले मनुष्य आदिको बाधना और दूसरा चौपाये जानवर गाय भैंस और घोडे आदिको बाँधना। फिर इसके भी दो भेद हैं एक अर्थ (प्रयोजन) से और दूसरा अनर्थसे।

अनर्थसे किसी प्राणिकोभी बाँधना वर्जित है, अब रहा अर्थबन्धन, वह भी दो प्रकारका होता है, एक सापेक्ष और दूसरा निरपेक्ष। मनुष्य या पशुको खूब मजबूती के साथ बाँधना निरपेक्ष बन्धन है यह कदापि नहीं करना चाहिये

क्योंकि यह अतिचार है इस लिये इससे श्रावकोंके प्रथम व्रतमें दोष उत्पन्न होता है।

(सापेक्ष बन्ध के लक्षण)

कोमल रस्सी आदिके द्वारा जो ढील्ग बन्धन किया जाता है और अग्नि आदि का भय उपस्थित होने पर जिस बन्धन से आसानी के साथ प्राणी छुट सकते हैं वह सापेक्ष बन्धन है। वह सापेक्ष बन्धन श्रावकोंके प्रथम व्रतका अतिचार नहीं है परन्तु वहभी जो प्राणी बाँधे बिना नहीं रह सकते हैं उन्हीका हो तो बुरा नहीं है अन्यथा बिना प्रयोजन ऐसा करना दोषके लिये ही होता है।

वधका स्वरूप और भेद भी बन्ध के समान ही है अतः निरपेक्ष होकर निर्दयताके साथ किसी भी प्राणीको अनर्थताडन करना अतिचार है अतः व्रतधारी श्रावकको सदा इससे बचे रहना चाहिये।

ताडन करनेका अवसर आजाने पर प्राणीके जीवनकी परवाह रखते हुए उसके मर्मस्थानोंको बचाकर लता आदिके द्वारा सापेक्ष ताडन करने पर अतिचार नहीं होता है।

इसी तरह छविच्छेदभी अनर्थ के लिये कदापि न करना चाहिये। नाक, कान, हाथ पैर आदिका निर्दयताके साथ छेदन करना अतिचार है परन्तु फोडा और मेद आदिमें कत

पाते हुए प्राणीके दुःख निवारणार्थ उसके फोडे और भेद आदिका छेदन भेदन या प्रज्वालन करना अतिचार नहीं है।

(अतिभार) हो सके तो श्रावकोंको प्राणियोंके द्वारा भार ढोलाकर जीविका करनेका त्याग कर देना ही अच्छा है परन्तु दूसरी जीविका न होने के कारण लाचार होकर यदि यह कार्य करनाही पडे तो इसका विचार यह है मनुष्य के ऊपर इतना अधिक भार न दे जिसको वह स्वय अपने ऊपर उठा न सके और स्वय नीचे उसे उतार न सके।

पशु के ऊपर रखा जानेवाला भार उसकी स्वाभाविक शक्ति से ज्यादा न हो तथा हल और गाडी में जोते हुए पशु ठीक समय पर छोड दिये जायँ। ऐसा करना अतिचार नहीं है। हाथी घोडे और ऊट आदि के विषयमें भी यही बात जाननी चाहिये।

किसी प्राणीको भूखा प्यासा रखना श्रावकका कर्तव्य नहीं है। यदि कोई श्रावक ऐसा करे तो उस के व्रत में अतिचार होता है परन्तु रोग आदि की निवृत्ति के लिये रोगी प्राणी को यदि उपवास कराना पडे तो यह अतिचार नहीं है किन्तु यह कार्य रोगी का कल्याण कारक होने से अच्छा माना गया है।

हर एक कार्य करते समय व्रतधारी श्रावकको यह विवेक रखना चाहिये कि-उस के कार्य्य से किसी प्राणी का घात न होजाय।

इन अतिचारों के विषय में दूसरे आचार्यों का मत यह है—

"बन्धवध छविच्छेद मतिभार भक्तपानव्युच्छेदम्।
क्रोधादिदूषितमनाः गोमनुजादीनां न करोति॥"

अर्थात् क्रोध आदिके वश होकर किसी प्राणीका बन्ध, वध, छविच्छेद, अतिभार और भक्तपान व्यवच्छेद न करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से प्रथम व्रत में अतिचार आता है।

(दूसरा व्रत स्थूलमृषावादविरमण)

झूठ बोलना मृषावाद कहलाता है। वह दो तरहका होता है, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। स्थूल वस्तु के विषय में दुष्ट अध्यवसाय से झूठ बोलना स्थूल मृषावाद है, इस के पाँच भेद होते हैं, जैसे कि—(१) कन्या के विषय में (२) गाय के विषय में (३) भूमि के विषय में (४) न्यासापहार के विषय में (५) झूठी साक्षी देने के विषय में।

जो कन्या कुल शील तथा अङ्गों से सम्पन्न है उस को दूषित बताना तथा जो इन से दूषित है उसको निर्दोष बताना कन्या के विषय में झूठ बोलना है। यद्यपि यहां कन्या शब्द ही आया है तथापि वह मनुष्य मात्रका उपलक्षण (बोधक) है इस लिये किसी भी मनुष्य के विषय में झूठ बोलना यहां वर्जित समझना चाहिये परन्तु कन्या के विषय में झूठ बोलना लोक में बहुत निन्दित समझा जाता है इस लिये यहां उसीका ग्रहण किया गया है।

दूसरा स्थूल मृषावाद 'गवालीक' यानी गाय के विषय में झूठ बोलना है। यहा भी गाय उपलक्षण है इस लिये गाय, भैंस, घोडा आदि चौपाये जानवरों के विषय में झूठ बोलना गवालीक समझना चाहिये।

(तीसरा स्थूल मृषावाद 'भूम्यलीक' यानी भूमि के विषय में झूठ बोलना है)

यहा भूमि के विषय में झूठ बोलने का अभिप्राय केवल पृथिवी के विषय में झूठ बोलने से ही नहीं किन्तु फल, वृक्ष आदि चेतन और सोना चाँदी लोहा आदि अचेतन पदार्थों के विषय म झूठ बोलने से भी समझना चाहिये।

(चौथा स्थूल मृषावाद न्यासापहारालीक)

किसी मनुष्य की धरोहर को हडप जाने के लिये झूठ बोलना न्यासापहारालीक है। यद्यपि ऐसा करना चोरी है तथापि यह कार्य्य झूठ बोलकर किया जाता है इस लिये इसे मृषावाद में ही माना है।

(पाँचवाँ (कूट साक्ष्य) झूठी साक्षी देना स्थूल मृषावाद है)

किसी की बुराई करने के लिये या घूस लेकर झूठी गवाही देना कूट साक्ष्य कहलाता है।

इन पाँच प्रकार के स्थूल मृषावादोको दो करण और तीन योग से त्याग करना स्थूलमृषावादविरमण नामक दूसरा व्रत है।

(स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पाँच अतिचार)

(१) सहसाभ्याख्यान (२) रहस्याभ्याख्यान (३) स्वदार मन्त्रभेद (४) मृषोपदेश (५) कूटलेखक्रिया। ये पाँच दूसरे व्रत के अतिचार हैं। अब क्रमशः इनके स्वरूप बताये जाते हैं–

(१) बिना सोचे विचारे किसी के ऊपर झूठा दोष लगाना, जैसे कि–"तू चोर है, तू जार है" इत्यादि सहसाभ्याख्यान कहलाता है।

(२) एकान्त में बैठ कर किसी विषयका विचार करते हुए मनुष्योंको देखकर उनके ऊपर राजद्रोह आदिका अभियोग (अपराध) लगाना रहस्याभ्याख्यान कहलाता है।

यदि व्रत की परवाह न करके जान बूझकर सहसाभ्याख्यान या रहस्याभ्याख्यान किये जायँ तो ये दोनो अनाचार में सम्मिलित होजाते हैं अतिचार में नहीं। यदि असावधानी से इनका आचरण हो जाय तो ये अतिचार माने जाते हैं।

अथवा किसी मनुष्य के ऊपर "कदाचित् यह ऐसा करता होगा" ऐसी शंका करके मिथ्यादोष लगाना रहस्याभ्याख्यान रूप अतिचार है परन्तु जान बूझकर किसी के ऊपर मिथ्या दोष लगाना अनाचार है अतिचार नहीं।

(३) एकान्त में अपनी स्त्री के द्वारा कही हुई गोपनीय

(छिपाने योग्य) बातोंको दूसरो के सामने प्रकट कर देना स्वदारमन्त्रभेद कहलाता है।

यहा यह सन्देह हो सकता है कि–अपनी स्त्री के द्वारा कही हुई बातों को दूसरो के सामने प्रकट करनेवाले पुरुषने मिथ्या भाषण नहीं किया किन्तु अपनी स्त्री के द्वारा हुई सत्य बातोंको ही कहा फिर उसका यह सत्य भाषण अतिचार में कैसे गिना गया? तो इसका उत्तर यह है कि–उक्त भाषण सत्य होने पर भी अपनी गुप्त बातों के प्रकट होजानेसे लज्जा आदि के वश हो कर यदि स्त्री अपना या दूसरे का घात कर डाले तो इससे अनर्थ होने की सम्भावना है इसलिये सत्य होने पर भी अनर्थ का हेतु होने के कारण यह बात अतिचार में गिनी गई है।

(४) ( चौथा अतिचार मृषोपदेश )

झूठ बोलने का उपदेश करना मृषोपदेश कहलाता है। जान बूझ कर किसी को झूठ बोलने का साक्षात् उपदेश करना तो अनाचार है परन्तु असावधानी से ऐसा हो जाय अथवा जिस सत्य भाषण से दूसरे की असत्य भाषण में प्रवृत्ति होना सभव हो उसका उपदेश करना मृषोपदेश अतिचार है। जैसे अपने पास सम्मति पूछने के लिये कोई मनुष्य आया हो तो उस से यदि यह कहाजाय कि–"अमुक समय झूठ बोलकर मैंने अपना कार्य कियाथा" तो इस से उस मनुष्य

की मिथ्या भाषण में प्रवृत्ति होना सम्भव है अतः सत्य होने पर भी यह उपदेश मृषोपदेश रूप अतिचार में सम्मिलित हो जाता है।

(पाँचवा अतिचार कूटलेखक्रिया)

किसी दूसरे मनुष्यके लेखके समान जाली लेख बनाना और उसपर उसीकी नकली मोहर छाप लगाकर सत्य लेखसा गढ देना कूटलेखक्रिया कहलाती है। यह कूटलेखक्रिया प्रमाद आदिसे की हुई अतिचार है परन्तु जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है।

दूसरा व्रत समाप्त

## तीसरा व्रत अदत्तादानविरमण

वस्तुके स्वामीकी आज्ञाके विना उसकी वस्तुको ले लेना अदत्तादान कहलाता है। यह स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो तरहका है। दूसरेकी चीजको हजम करलेनेकी इच्छासे उसकी आज्ञा के विना ले लेना स्थूल अदत्तादान है। भाव यह है कि जिससे चोरीका अपराध लग सकता है वह स्थूल अदत्तादान माना गया है।

किसी दूसरे की चीजको स्वामी की आज्ञा के विना अच्छी नीयतसे ले लेना सूक्ष्म अदत्तादान है।

## (स्थूल अदत्तादान के दो भेद)

सचित्त और अचित्त भेद से स्थूल अदत्तादान दो प्रकारका होता है।

दूसरे के गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, आदि जानवर जाप्ते या गैर जाप्ते के साथ रक्खे हुए हों, अथवा उनका स्वामी उन्हें रखकर भूल गया हो, अथवा वे स्वय आकर अपने पशुओं के झुण्ड में मिल गये हों, किसी प्रकार भी उन्हें चुरालेना सचित्त स्थूल अदत्तादान है।

दूसरोंकी सोना, चाँदी, वस्त्र और रत्न आदि अचित्त वस्तु जाप्ते या गैर जाप्ता के साथ रखी गई हो, या इनका स्वामी उन्हें भूल गया हो, उन वस्तुओंको हजम करने की नीयत से ले लेना अचित्त स्थूल-अदत्तादान है। इन दोनों स्थूल अदत्तादानोंको दो करण और तीन योग से त्याग करना अदत्तादान विरमण व्रत है।

## (अदत्तादान विरमण व्रत के पाँच अतिचार)

(१) स्तेनाहृत (२) तस्करप्रयोग (३) विरुद्धराज्यातिक्रम (४) कूटतुला कूटमान (५) तत्प्रतिरूपकव्यवहार।

ये पाँच अदत्तादानविरमण व्रत के अतिचार हैं।

अल्प मूल्य में प्राप्त होने के लोभसे चोरीकी वस्तु को खरीदना स्तेनाहृत कहलाता है।

चोरी करने के लिये चोरों को उत्साह देना तस्कर प्रयोग कहलाता है। ये कार्य्य यदि परतन्त्रता आदि कारणों से विवश हो कर किये जायें तो अतिचार हैं परन्तु उक्त कारण के बिना जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है।

जिस राजा के राज्य में निवास करते हैं उसकी आज्ञा के बिना उस के विरोधी राज्य में प्रवेश करना विरुद्ध राज्यातिक्रम है।

तराजू या माँप के द्वारा अधिक वस्तु लेना और कम देना कूट तुला और कूट मान अतिचार है। यह कार्य्य भी प्रमाद आदि दोष से हो जाय तो अतिचार है अन्यथा जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है।

( पाँचवाँ अतिचार तत्प्रतिरूपक व्यवहार )

इसका व्यवहार दो तरह का है। एक तो यह है कि—समान रूपवाली कम कीमती वस्तु को अधिक मूल्यवाली वस्तु में मिलाकर अधिक मूल्य से बेंचना, जैसे—घटिया चावलको उत्तम चावल में मिलाकर अच्छे चावल के भाव से बेंचना इत्यादि। दूसरा यह है कि—रूप रङ्गमें समान वस्तुको दूसरी वस्तु के नाम से बेंचना, जैसे चर्बीको घी बताकर बेंचना आदि। ये दोनों ही तत्प्रतिरूपक व्यवहार में हैं। यदि भूल से यह कार्य्य हो जाय तो अतिचार है नहीं तो जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है।

(चौथा व्रत स्वदार सन्तोष-परदारविरमण)

अपनी विवाहिता स्त्रीमें सन्तोष रखते हुए परस्त्री गमन को वर्जित करना स्वदारसन्तोष परदारविरमण व्रत है। परदारायें दो प्रकार की होती हैं, एक औदारिक शरीरवाली और दूसरी वैक्रिय शरीरवालीं। मनुष्य और तिर्यञ्च जाति की स्त्रियाँ औदारिक शरीर वाली हैं और देव जातिकी स्त्रियाँ वैक्रिय शरीरवाली हैं। इन दोनो ही जाति की स्त्रियों को त्याग कर केवल अपनी विवाहिता स्त्रीमें ही सन्तुष्ट रहना परदार विरमण व्रत कहलाता है श्रावक श्राविकाओंको जीवन पर्यन्त इस व्रतका पालन करना चाहिये।

इस चौथे व्रत के पांच अतिचार होते हैं

(१) इत्वरपरिगृहीता गमन (२) अपरिगृहीता गमन (३) अनङ्गक्रीडा (४) परविवाहकरण (५) कामभोगतीव्राभिलाप।

(इत्वरपरिगृहीतागमन)

किसी अन्य स्त्रीको नियत समय तक अपने आधीन रखकर उसके साथ मैथुन सेवन करना 'इत्वरपरिगृहीता गमन' कहलाता है। यह पहला अतिचार माना गया है। यह अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचारकी सीमा के अन्दर जबतक रहता है तबतक अतिचार माना जाता है परन्तु अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचारकी सीमाको उल्लङ्घन करने पर यह अनाचार है अतिचार नहीं। किसी

कार्य्य के करनेका सकल्प करना, जैसे कि–"मैं अमुक कार्य्य करूगा" 'अतिक्रम' कहलाता है और सकल्प किये हुए कार्य्यकी सिद्धि के लिये सयोग जोडना 'व्यतिक्रम' माना जाता है एव संयोग होजाने पर मैथुन सेवन आदि कार्य्यों के स्पर्श आदि बाहरी क्रियाओंका अनुष्ठान करना अतिचार कहलाता है। परन्तु साक्षात् मैथुन सेवन करना अनाचार है अतिचार नहीं।

( अपरिगृहीतागमन )

जिस स्त्रीका पाणि ग्रहण करनेवाला पति न हो अथवा हो कर मर गया हो ऐसी कोई वेश्या अथवा विधवा स्त्री तथा अविवाहिता कन्या आदि के साथ मैथुन सेवनका सकल्प करना या उसका सयोग जोडना अथवा उन स्त्रियों के साथ मैथुन सेवन का बहिरङ्ग उपचार स्पर्श आदि करना अपरिगृहीतागमन कहलाता है। इन स्त्रियों के साथ साक्षात् मैथुन सेवन करना, अतिचार नहीं किन्तु अनाचार है।

( तीसरा अतिचार अनङ्गक्रीडा )

मोहकी प्रबलता से मैथुन सेवन की तीव्र इच्छा के कारण काष्ठ, फल, मिट्टी और चमडे आदि की बनी हुई योनि में अप्राकृतिक दुराचार करना, तथा अपनी स्त्रीके भी मुख, स्तन, कांख, उरु आदि अङ्गों में काम सेवन करना तथा हस्तकर्म करना 'अनङ्गक्रीडा' है।

स्वदार सन्तोष तथा परदार विमरण व्रत धारण करनेका उद्देश्य अपनी काम प्रवृत्तिको न्यून करना है वृद्धि करना नहीं इसलिये काम प्रवृत्ति के वर्धक कार्योंका अनुष्ठान करना इस व्रत के धारण करने वाले पुरुषको उचित नहीं है अतः इस व्रतको धारण करनेवाला पुरुष यदि काष्ठ, फल, मिट्टी तथा चर्मकी बनी हुई योनि में अथवा अपनी स्त्रीके भी मुख स्तन आदि अङ्गों में मैथुन सेवन करे अथवा हस्तकर्म आदि अन्य कृत्रिम मैथुन करे तो वह अपनी काम प्रवृत्तिकी वृद्धि करता है न्यून नहीं करता है अतः उक्त कर्मोंका सेवन इस व्रत का अतिचार है।

(चौथा अतिचार–परविवाहकरण)

जिस पुरुषने स्वदार सन्तोष तथा परदारविरमण व्रतको धारण किया है वह दूसरेकी काम प्रवृत्तिको भी नहीं बढाता है इसलिये वह जिस कार्य्य से दूसरे की काम प्रवृत्ति बढती है वह कार्य्य भी नहीं करता है। इस व्रत को धारण करनेवाला पुरुष यदि मोह में पडकर या कन्यादान से स्वर्गादिकी प्राप्ति होती है यह समझकर अपने अथवा अपने कुटुम्ब के सन्तानों से भिन्न दूसरे पुरुष या कन्याका विवाह करावे तो वह अतिचारका सेवन करता है क्योंकि उसका यह कार्य्य दूसरेकी मैथुन प्रवृत्तिका वर्धक है अतः इस व्रतका पर विवाहकरण अतिचार माना जाता है।

(पाचवा अतिचार कामभोगतीव्राभिलाप)

शब्द और रूपको काम कहते हैं तथा गन्ध, रस और स्पर्शको भोग कहते हैं इन दोनोंकी अत्यधिक इच्छा करना 'कामभोगतीव्राभिलाप' कहलाता है।

जिस पुरुषने स्वदारसन्तोष तथा परदारविरमण रूप व्रतको धारण करके अपनी काम प्रवृत्ति को न्यून किया है वह यदि वाजीकरण आदि शक्तिवर्धक औषधियोंका सेवन करके अपनी स्त्रीके साथ भी निरन्तर कामभोगकी तृष्णा करे तो उसके व्रतमें अतिचार (दोष) उत्पन्न होता है अतः उक्त व्रत-धारीका यह कर्तव्य नहीं है। वस्तुतः शरीरमें कण्डुरोग उत्पन्न करके अग्निसेवनकी इच्छा करना जैसे मूर्खता है इसीतरह वाजीकरण आदि औषधियोंका सेवन करके मैथुनप्रवृत्तिको बढाना मूर्खता है। चौथा व्रत और उसके अतिचार कह दिये गये।

(पाचवाँ इच्छापरिमाणव्रत)

मनुष्य, हाथी, घोडा, गाय, भैंस आदि सचेतन पदार्थ और रत्न, सोना, चाँदी तथा वस्त्र आदि अचेतन वस्तु इन दोनों प्रकारके परिग्रहोंकी अपने पास रखनेकी कोई मर्यादा (अवधि) नियत करना इच्छापरिमाण व्रत कहलाता है। इस व्रत में मर्यादा नियत करनेका कोई नियम नहीं है अतः सभी श्रावक अपनी अपनी इच्छा और शक्तिके अनुसार परिग्रहो [illegible] कायम कर सकते हैं। परन्तु इस

धारण करनेका उद्देश्य अपनी तृष्णाको न्यून करना है इसलिये मर्य्यादा नियत करने के समय अपनी तृष्णाकी न्यूनताके ऊपर ध्यान रखकर मर्य्यादा कायम करनी चाहिये। नीचे लिखी हुई वस्तुओंके विषयमें अपनी अपनी इच्छानुसार मर्य्यादा नियत करनी चाहिये, जैसेकि—

(क्षेत्रकी मर्य्यादा नियत करना)

जिसमें गेहूं चने आदि बोए जाते हैं उस पृथिवीको क्षेत्र कहते हैं उसके विषयमें कोई अवधि नियत करना जैसेकि— "मैं इतने क्षेत्र से अधिक क्षेत्र अपने पास न रखूंगा" क्षेत्रकी मर्य्यादा नियत करना है।

(गृहकी मर्य्यादा नियत करना)

हवेली, महल, बगला और मकान आदिकी मर्य्यादा कायम करना गृहकी मर्य्यादा कायम करना है।

(हिरण्यकी मर्य्यादा कायम करना)

चाँदी और सोना आदिकी मर्य्यादा नियत करना हिरण्यकी मर्य्यादा नियत करना है।

(धनके विषयमें मर्य्यादा नियत करना)

सोना आदिके विषयमें मर्य्यादा कायम करना धनके विषयमें मर्य्यादा नियत करना है। तथा गेहूँ चने आदि अन्नोंके विषयमें मर्य्यादा कायम करना धान्यके विषयमें मर्य्यादा कायम करना है। अपनी अपनी इच्छाके अनुसार श्रावकोंको

ऊपर लिखी हुई वस्तुओंके विषयमें मर्य्यादा कायम करनी चाहिये। आनन्द श्रावकने ऊपर लिखी हुई वस्तुओंकी मर्य्यादा इस प्रकार की थी उसने १२ कोटि रकमको तीन भागोंमें बाँटकर अपने पास रखनेकी मर्य्यादा कायम की थी इससे अधिक रखनेका त्याग कियाथा। तथा पाँच सौ हलोंसे जोतसकने योग्य जमीन को रखकर अधिक क्षेत्र रखने का त्याग कियाथा, एव चौपाये जानवरोंमें ४०००० गायोंको रखनेकी अवधि नियत करके अधिक के रखनेका त्याग कियाथा। तथा एक हजार गाडियाँ और चार छोटी और चार बडी जहाजोंको रखनेकी अवधि कायम करके शेषका त्याग कियाथा इसी तरह सभी श्रावकोंको अपनी अपनी इच्छाके अनुसार अपने अपने परिग्रहोंकी अपने पास रखनेकी मर्य्यादा नियत करनी चाहिये।

यहा यह सन्देह होता है कि आनन्द श्रावकने जिस समय श्रावकोंके बारहव्रत धारण किये थे उस समय उसके पास बारह कोटि मोहर और ४०००० चालीस हजार गायें थीं, आनन्द श्रावकने इतनी ही गायों और मोहरोंको रखनेकी मर्य्यादा कायम करके शेषका त्याग कियाथा परन्तु उसके गृहवास कालकी समाप्ति पर्य्यन्त इन मोहरोंकी वृद्धिकी जो रकम उत्पन्न हुइ होगी और गायोंसे जो गोवशकी वृद्धि हुई होगी उनको उसने क्या किया? यदि अपने पास रखा होगा तो मर्य्यादा कायम नहीं रह सकती है और यदि

न रखा हो तो उन्हें क्या किया था?। इसका समाधान यह है कि आनन्दने वृद्धिके रुपयको परोपकारमें लगादिया होगा तथा बढ़ीहुई गायोंको दानमें देदिया होगा ? नहीं तो उनकी उतनी ही मरया बना रहना असम्भव है अत श्रावकोंको परोपकार वृत्तिका सदा ध्यान रखना चाहिये।

(इच्छापरिमाणव्रतके पाँच अतिचार)

(१) क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम (२) हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम (३) द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रम (४) धनधान्यप्रमाणातिक्रम (५) कुप्यप्रमाणातिक्रम। ये पाच इच्छापरिमाण व्रतके अतिचार हैं।

(१) नदी, या वृष्टिके जलसे सींचकर जिस भूमिमें अन्न आदि उत्पन्न किये जाते हैं उस भूमिको क्षेत्र कहते हैं। मकानको 'वास्तु' कहते हैं वह तीन प्रकारका होता है। प्रथम भूमि गृह, जो जमीनके अन्दर बना हुआ होता है। दूसरा वह, जो जमीनके ऊपर बना हुआ होता है। तीसरा वह, जो कुछ भूमिके अन्दर और कुछ ऊपर बना हुआ होता है।

पहले कहे हुए क्षेत्र और गृहके विषयमें जो मर्यादा कायम की गई हो उसको उल्लङ्घन करना 'क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम' कहलाता है।

(हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम)

सिक्के या दागीने के रूपमें गढ़कर बनाई हुई या विना

बनाई हुई चाँदी और जेवर तथा मोहरके रूपमें गढे हुए या विना गढे हुए सोने के सम्बन्धमें श्रावकने जो मर्य्यादा कायम की हो उस मर्य्यादाका उल्लङ्घन करना 'हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम' है यह कार्य्य यदि भूलसे होजाय तो अतिचार है अन्यथा जान बूझकर ऐसा करना अनाचार समझना चाहिये। यदि किसी श्रावकने किसी खास अवधितक मर्य्यादा ले रक्खी हो, जैसे कि "मैं पाँच वर्षतक इतना ही हिरण्य सुवर्ण रक्खूंगा अधिक नहीं" उस श्रावक को यदि कोई राजा महाराजा आदि उसकी मर्य्यादा से अधिक हिरण्य सुवर्ण देवे तो वह यदि मर्य्यादासे अधिक द्रव्यको दूसरेके पास अवधि पूरी होने पर लेलेनेकी इच्छा से रख दे तो यह कार्य्य उस श्रावकके व्रतका अतिचार समझना चाहिये।

(तीसरा अतिचार द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रम)

दास दासी आदि मनुष्य तथा हंस और मोर आदि पक्षी द्विपद हैं एवं हाथी, घोडा और गाय भैंस आदि जानवर 'चतुष्पद' हैं इन दोनोंके सम्बन्धमें व्रतधारी श्रावकने जो मर्य्यादा नियत की हो उस मर्य्यादाको भूलसे अथवा व्रतकी अपेक्षा रखकर उल्लङ्घन करना द्विपदचतुष्पदप्रमाणातिक्रमरूप अतिचार है।

(चौथा अतिचार धनधान्यप्रमाणातिक्रम)

गुड शक्कर वगैरह धन कहलाते हैं और शाली, कोद्रव, मूंग, और गेहूँ चने आदि अन्न धान्य कहलाते हैं, इनके विष-

यमें श्रावकने जो मर्य्यादा कायम की है उसको उल्लङ्घन करना धनधान्यप्रमाणातिक्रम रूप अतिचार है। यह कार्य्य यदि भूलसे हो जाय अथवा व्रतकी अपेक्षा रखकर किया गया हो तो अतिचार है अन्यथा अनाचार समझना चाहिये।

(पांचवां अतिचार कुप्यप्रमाणातिक्रम)

आसन, शय्या, और पात्र आदिके विषयमें श्रावकने जो मर्य्यादा कायम की हो उसको उल्लङ्घन करना 'कुप्यप्रमाणातिक्रम' रूप अतिचार है। यह कार्य्य यदि भूलसे अथवा व्रतकी अपेक्षा रखकर किया गया हो तो अतिचार है नहीं तो जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है।

पूर्वोक्त श्रावकोंके पाँच व्रत 'अनुव्रत' कहलाते हैं। इन अनुव्रतोंके पालन करने में पूरी सहायता देनेवाले व्रत गुणव्रत कहलाते हैं। इन के तीन भेद हैं, जैसेकि—(१) दिग्व्रत, (२) उपभोगपरिभागप्रमाण व्रत (३) अनर्थदण्डवर्जन व्रत। ये तीनो व्रत गुणव्रत कहलाते हैं।

(१) पूर्व आदि दिशाओंमें जाने आने या किसीको भेजनेकी मर्य्यादा कायम करना, जैसेकि "मैं पूर्व आदि दिशाओंमें इतने कोससे अधिक न जाऊंगा या किसीको न भेजूंगा" दिग्व्रत कहलाता है यह तीन प्रकारका होता है।

(१) ऊर्ध्वदिग्व्रत (२) अधोदिग्व्रत (३) और तिर्य्यग् दिग्व्रत। ऊपरकी दिशाओं में अर्थात् पर्वत आदिके ऊपर चढ़ने और उतरनेकी मर्य्यादा कायम करना जैसेकि "मैं

पर्वत आदि ऊँचे स्थानों पर इतनी दूरसे ज्यादा न चढूगा" इत्यादि ऊर्ध्वदिग्व्रत कहलाता है

तालाव, बावडी और कूप आदि नीचे के स्थानों में चढने और उतरनेकी मर्य्यादा कायम करना अधोदिग्व्रत कहलाता है

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में तथा वायव्य आदि कोणों में अपने आने जानेकी मर्य्यादा कायम करना तिर्य्यग् दिग्व्रत कहलाता है।

दिग्व्रतोंके धारण करनेसे नियत की हुई मर्य्यादासे बाहरके जीवोंका घात व्रतधारी श्रावकके द्वारा नहीं होता है इसलिये इस व्रतका धारण आवश्यक है।

दिग्व्रतके पांच अतिचार)

(१) ऊर्ध्वदिग्व्रतप्रमाणातिक्रम
(२) अधोदिग्व्रतप्रमाणातिक्रम
(३) तिर्य्यग्दिग्व्रतप्रमाणातिक्रम
(४) क्षेत्रवृद्धि (५) स्मृतिभ्रंश।

(१) ऊपरकी दिशामें अर्थात् पर्वत आदि के ऊपर चढने उतरने आदिकी जो मर्य्यादा श्रावकने नियत की है उसको उल्लङ्घन करना यानी उससे अधिक देशतक जाना आना 'ऊर्ध्वदिग्व्रतप्रमाणातिक्रम' है। यह भूलसे हो जाय

अतिचार है अन्यथा जान बूझकर ऐसा करना अनाचार समझना चाहिये।

(२-३) नीचेकी दिशा और तिर्य्यग् दिशाओंमें जो अवधि कायम की हो उसको भूल से भङ्ग करदेना अतिचार समझना चाहिये।

(४) (क्षेत्रवृद्धि)

पूर्व आदि दिशाओं में आने जाने के लिये जो क्षेत्र नियत किया गया हो, उस को व्रतकी अपेक्षा रखते हुए बढ़ादेना क्षेत्रवृद्धि कहलाता है। जैसे किसी श्रावकने पूर्व दिशा में आने जाने के लिये सौ योजनकी मर्य्यादा कायम की है और पश्चिम दिशामें दस योजन की अवधि नियत की है, उस श्रावक को पश्चिम दिशा में दस योजन से अधिक क्षेत्र में जानेका कार्य्य उपस्थित होनेपर वह यदि पूर्व दिशा के कुछ योजनों को पश्चिम दिशा में मिलाकर पश्चिम दिशा के क्षेत्रकी वृद्धि करे तो यह क्षेत्रवृद्धि नामक अतिचार है। ऐसा करनेवाले श्रावकने अपने व्रतकी अपेक्षा रखकर क्षेत्रवृद्धि की है इस लिये इसका यह कार्य्य अतिचार है अनाचार नहीं है।

(५) (स्मृतिभ्रंश)

जिस दिशा में जाने आनेके लिये जितनी मर्य्यादा नियत की है उसको भूल जाना, अथवा नियत की हुई मर्य्यादा पूरी न होने पर भी पूरी होनेका सन्देह होने पर आगे चलाजाना स्मृतिभ्रंश नामक अतिचार है।

जिस श्रावकने पूर्व दिशा में तथा पश्चिम आदि दिशा में जाने आने के लिये जो मर्यादा नियत की है उस मर्यादा को यदि वह याद न रखे किन्तु भूल जाय तो वह स्मृति भ्रंश नामक अतिचारका दोषी होता है तथा जिसने अपनी नियत की हुई मर्यादा को विस्मृत तो नहीं किया है परन्तु "मैं अपनी मर्यादा तक आ गया हूगा" ऐसा सन्देह होने पर भी आगे चला जाता है तो वह भी स्मृतिभ्रंश नामक अतिचारका दोषी होता है।

दिग्व्रत और उस के अतिचार समाप्त हुए।

### (सातवाँ उपभोग परिभोग व्रत)

एक ही वार भोग करने योग्य भोजन और पान आदि पदार्थ उपभोग कहलाते हैं और वार वार भोगे जाने योग्य वस्त्र, भूषण और स्त्री आदि पदार्थ परिभोग कहलाते हैं इन दोनों का प्रमाण नियत करना उपभोगपरिभोग व्रत कहलाता है। यह व्रत दो प्रकारका होता है, एक भोजन से और दूसरा कर्म से।

उपभोग करने योग्य भोजन और पान आदि पदार्थोंका तथा परिभोग करने योग्य वस्त्र और भूषण आदि पदार्थों का प्रमाण निश्चित करना अर्थात् "मैं अमुक अमुक वस्तुको ही अपने उपभोग परिभोग में रखूंगा इन से भिन्न पदार्थों को न रखूंगा" ऐसी संख्या नियत करना भोजन से उपभोग

परिभोग व्रत है और उपभोग तथा परिभोग के योग्य पदार्थोंकी प्राप्ति के लिये उद्योग धन्धोंका प्रमाण करना जैसे कि-"मैं अमुक अमुक उद्योग धन्धो से ही अपने उपभोग और परिभोग की वस्तुओं का उपार्जन करूंगा दूसरे कार्य्यों से नहीं" कर्म से उपभोगपरिभोग व्रत समझना चाहिये। इस व्रतकी विशेष विधि नीचे लिखी जाती है-

( उल्लणियाविहिपरिमाण )

स्नान करने के पश्चात् जल से भींगे हुए शरीर को पोंछने के लिये गमछा आदि वस्त्र जातिका प्रमाण निश्चित करना 'उल्लणियाविहिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने स्नान के पश्चात् भींगे हुए अपने शरीर को पोंछने के लिये थोडासा रक्त और सुवासित गमछेका नियम किया था।

( दन्तवणविहिपरिमाणम् )

दात के मल को साफ करने के लिये काष्ठ के दातन आदिका प्रमाण नियत करना 'दन्तवणविहिपरिमाण कह लाता है। आनन्द श्रावकने हरी मुलहठी के काष्ठ से दात साफ करने की मर्यादा नियत की थी।

( फलविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के पूर्व शिर धोने के लिये आँवले आदि फलोंका प्रमाण नियत करना "फलविहि परिमाण" कहलाता है। आनन्द श्रावक ने स्नान के पूर्व अपना शिर धोने के लिये

जिस में गुठली उत्पन्न न हुई हो ऐसे मीठे आँवले के फलका नियम कियाथा।

( अभ्यंगणविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के पूर्व शरीर में मर्दन करने योग्य तेल आदि का प्रमाण निश्चित करना, 'अभ्यंगणविहिपरिमाण' है। आनन्दने सौ ओषधियों को डालकर बनाये हुए शतपाक तेल और हजार औषधियों को मिलाकर बनाये हुए सहस्रपाक तेलको स्नान के पूर्व मर्दन करने का नियम कर रखाथा।

( उवट्टनविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के पूर्व शरीर में लगे हुए तेल को शोषण करने के लिये जो पिट्टी आदि लगाई जाती है उसका प्रमाण निश्चित करना 'उवट्टनविहिपरिमाण' कहलाता है।

आनन्द श्रावकने अपने शरीर में लगे हुए तेलको शोषण करने के लिये कमलों के पराग और सुवासित गेंहू के आटेका प्रमाण कर रखाथा।

( मज्जनविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के लिये जलका प्रमाण निश्चित करना मज्जनविहि परिमाण कहलाता है।

आनन्द श्रावकने अपने स्नान के लिये औष्ट्रिक आठ घडे जलका प्रमाण कियाथा।

( वत्थविहिपरिमाणम् )

पहनने और ओढने योग्य वस्त्रोंका प्रमाण करना वस्त्र विधि परिमाण कहलाता है।

आनन्द श्रावकने अपने पहनने और ओढने के लिये कपास के बने हुए दो वस्त्रोंका ही नियम कर रखाथा।

( विलेवणविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के पश्चात् अपने शरीर में लेपन करने योग्य चन्दन और केशर आदि सुगन्ध द्रव्योंका प्रमाण निश्चित करना 'विलेपनविधिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने अपने शरीर में लेपन करने के लिये चन्दन, केशर, और अगर आदि सुगन्ध द्रव्योंकी मर्य्यादा कायम कीथी।

( पुप्फविहिपरिमाणम् )

स्नान करने के पश्चात् शरीर में धारण करने योग्य फूल माला आदि पदार्थोंका प्रमाण करना 'पुष्पविहिपरिमाण' है। आनन्द श्रावकने स्नान करने के पश्चात् धारण करने के लिय खिले हुए कमल और चमेली के फूलोंकी माला का प्रमाण कियाथा।

( आभरणविहिपरिमाणम् )

अपने शरीरकी शोभा के लिये धारण किये जाने वाले गहनें और जेवर आदिका प्रमाण करना 'आभरणविहिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने अपने शरीरकी शोभा

के लिये स्वच्छ और एक रंगवाले कुण्डल तथा नामाङ्कित मुद्रिका (अँगूठी) धारण करनेका प्रमाण कियाथा।

( धूवणविहिपरिमाणम् )

वस्त्र और शरीरको सुगन्धित करने के लिये धूप देने योग्य पदार्थोंका प्रमाण करना 'धूवणविहिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने धूप देनेके लिये अगर और सोलारस आदि द्रव्योंका प्रमाण कियाथा।

( भोयणविहिपरिमाणम् )

भोजन करने योग्य पदार्थोंका प्रमाण करना 'भोयण-विहि परिमाण' कहलाता है। इसके निम्नोक्त भेद हैं

( पेजविहिपरिमाणम् )

भोजन के समय पीने योग्य दूध आदि पदार्थोंका प्रमाण करना 'पेयविधि प्रमाण' कहाजाता है। आनन्द श्रावकने भोजन के समय पीने के लिये मूंगकी दाल और घी मिलाये हुए चावल के जलका प्रमाण कियाथा।

( भक्खविहिपरिमाणम् )

खाने के लिये पक्वान्न आदिका प्रमाण निश्चित करना 'भक्खविहि परिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने अपने खानेके लिये घेवर और खाडसे लिप्त खाजेका प्रमाण कियाथा।

( ओदणविहिपरिमाणम् )

अपनी क्षुधाकी निवृत्ति के लिये चावल आदि के भात आदि पदार्थोंका प्रमाण करना 'ओदनविधि प्रमाण' कहलाता

( जेमणविहिपरिमाणम् )

बड़ा पकौड़ी आदि खाने के योग्य पदार्थोंका प्रमाण करना 'जेमणविहिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने तक्र छाछ दही, और कांजी आदि खट्टी चीजों में भीगोये हुए मूग आदि के दालके बड़े और पकौड़ी आदिका प्रमाण कियाथा। आजकल इसको दही का बड़ा, कांजीका बड़ा और दालिया आदि कहते हैं।

( पाणियविहिपरिमाणम् )

पीने के लिये पानीका प्रमाण निश्चित करना 'पाणियविहि परिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने गिरते के साथ ही टांकी आदि के द्वारा पकड़े हुए आकाश के पानीका अपने पीने के लिये प्रमाण नियत कियाथा।

( मुहवासविहिपरिमाणम् )

अपने मुखको सुवासित करने के लिये 'पान' और चूर्ण आदि पदार्थोंका प्रमाण निश्चित करना 'मुहवासविहिपरिमाण' कहलाता है। आनन्द श्रावकने अपने मुखको सुवासित करने के लिये लवङ्ग, कपूर, कायफल, जायफल और इलायची डाले हुए पानका प्रमाण कियाथा।

ऊपर कहे हुए उपभोग परिभोग प्रमाण व्रतकी समाचारी में शास्त्रका मन्तव्य यह है—उपभोगपरिभोगप्रमाण व्रतको

* उपभोग परिभोग के योग्य जितने पदार्थ देशाचार के अनुसार हों उनकी भी मर्यादा करना श्रावकों का कर्तव्य है परन्तु ऊपर के 21 नियम उपलक्षण हैं।

धारण किये हुए श्रावक उत्सर्गसे प्रासुक वस्तुका ही आहार किया करते हैं परन्तु प्रासुक वस्तु न मिलने पर अपने शरीरकी रक्षाके लिये वे सचित्तको छोड़कर अचित्त अप्रासुक वस्तुका भी आहार करते हैं। दैववश अचित्त अप्रासुक वस्तु भी जब नहीं मिलती है तब वे अनन्तकाय और बहुबीजयुक्त पदार्थोंको वर्जित करके शेष वस्तुओं से अपने शरीर की रक्षा करते हैं।

( चतुर्विध आहारों में वर्जनीय वस्तु )

अशन में अनन्तकाय आदी, कादा (प्याज) लशुन आदि जमीकन्द तथा सब प्रकार के मांस वर्जित हैं। एव पीने योग्य पदार्थों में मांसका रस, चर्बी और मदिरा आदि त्यागने योग्य है तथा खाद्य पदार्थों में गुलर, काकोदुम्बर (तिमरु) वट, पीपल और पलाश आदि निन्दित हैं एव स्वाद्य पदार्थोंमें शहद आदि वर्जित है।

भोजन से उपभोग परिभोग प्रमाण व्रत के धारण की विधि बतादी गई अब इसके अतिचार बताये जाते हैं

( भोजन से उपभोग परिभोग व्रत के पाच अतिचार )

(१) सचित्ताहार (२) सचित्तप्रतिबद्धाहार (३) अपक्वौषधिभक्षण (४) दुष्पक्वौषधि भक्षण (५) तुच्छौषधिभक्षण। ये पाच भोजनत. उपभोग परिभोग व्रत के अतिचार होते हैं।

( सचित्ताहार )

सचित्त पदार्थों के भक्षणका त्यागी श्रावक के द्वारा सचित्त कन्द, मूल, फल, फूल तथा पृथिवीकाय नमक आदि

का भक्षण किया जाना सचित्ताहार नामक अतिचार है। व्रत धारी श्रावक यदि भूल से सचित्त वस्तुका भक्षण करलेवे अथवा सचित्त वस्तु में यदि उसका अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार हो जाय तो उसे अतिचार कहना चाहिये अन्यथा जानबूझकर सचित्त वस्तुका भक्षण करना अनाचार है अतिचार नहीं है।

(सचित्तप्रतिबद्धाहार)

जिस श्रावकने सचित्त वस्तुका आहार करना त्याग किया है उसके द्वारा सचित्त वृक्ष में लगी हुई गोंद, तथा सचित्त बीजवाले आम और खजूर आदि फलोंका भूलसे भक्षण किया जाना अथवा इन में अतिक्रम, व्यतिक्रम, और अतिचार हो जाना अतिचार है परन्तु जान बूझकर ऐसा करना अनाचार है अतिचार नहीं।

(सचित्त प्रतिबद्धाहारकी दूसरी व्याख्या)

"गीरी या दलको खाजाऊगा और गुठलीको थूक दूंगा" इस विचार से सचित्त बीज से युक्त फलको अपने मुख में डालना 'सचित्तप्रतिबद्धाहार' कहलाता है। कहीं कहीं सचित्त प्रतिबद्धाहार के स्थान में 'सचित्तसम्मिश्राहार' यह पाठ पाया जाता है। इसका अर्थ, सचित्त से मिले हुए अचित्त पदार्थको आहार करना है। अध पके खरबूजे ककड़ी जल आदि, दाडिमबीज, तथा आधे कूटे हुए तिल, यव और धान आदि अन्न 'सचित्तसम्मिश्राहार' है। [redacted] में पके हुए और कूटे हुए अन्न अचित्त और कच्चे तथा बिना कूटे अन्न

सचित्त है अतः अचित्त के त्यागी पुरुष के लिये ये भक्षण करने योग्य नहीं हैं।

(अपक्कौषधि भक्षण)

जो औषधि पकी हुई नहीं है उस का खाना (अपक्कौषधिभक्षण) कहलाता है। कच्चा चिवडा चावल, और यव आदि धानों को भूल से खा जाना अथवा इन में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार हो जाना अतिचार है परन्तु जान बूझकर उक्त कच्ची औषधियों को खाना अतिचार नहीं किन्तु अनाचार है।

यहाँ यह सन्देह होता है कि–कच्ची औषधिया सचित्त हैं अचित्त नही है इस लिये इनका भक्षण सचित्ताहार में ही आ जाता है फिर सचित्ताहार से अलग अपक्कौषधिभक्षण को लिखने की क्या आवश्यकता है ?। इसका समाधान यह है कि–खाने योग्य पदार्थों में सब से प्रधान औषधिया हैं इस लिये इसे अलग लिखा गया है। जैसे लोक में कहते हैं कि– "गायोंका समूह आया और साढ भी आ गया" यद्यपि साढ भी गौ ही है गौ से भिन्न नही है फिर भी उसकी प्रधानता बताने के लिये जैसे लोकमें गौ मे अलग साढका कथन किया जाता है इसी तरह सचित्त पृथिवीकाय आदिकी अपेक्षा औषधियोंकी प्रधानता बताने के लिये यहा अलग "अपक्कौषधिभक्षण" नामक अतिचार कहा गया है। सचित्त पृथिवी काय आदि पदार्थ उतनी मात्रा में खाने के काममें नहीं लिये

जाते हैं जितनी औषधियां ली जाती है अतः इसे पृथक् लिखना न्यायसङ्गत है।

( दुष्पक्वौषधिभक्षण )

अग्नि आदि के द्वारा कुछ पकी हुई और कुछ कच्ची औषधियो को खाना " दुष्पक्वौषधिभक्षण " कहलाता है। यह भी भूल से होने पर अतिचार है अन्यथा जान बूझकर करना अतिचार नहीं किन्तु अनाचार है।

( तुच्छौषधिभक्षण )

जिनको खाने से तृप्ति थोड़ी और विराधना अधिक होती है ऐसी मूँगकी फली आदि तुच्छ औषधियो को खाना 'तुच्छौषधिभक्षण' कहलाता है। यह भी अनाभोग आदि से किया हुआ अतिचार है अन्यथा अनाचार हो जाता है। यहा यह संदेह होता है कि कच्ची मूँग आदिकी फली आदि तुच्छ औषधिया भी अपक्व औषधियो में आ जाती है इस लिये तुच्छ औषधियो का भक्षण भी अपक्वौषधि भक्षण रूप अतिचार में ही आ जाता है फिर तुच्छौषधिभक्षण को, अपक्वौषधि भक्षण से अलग लिखने की क्या आवश्यकता है ?।

इसका समाधान यह है कि—अपक्वौषधिभक्षण नामक अतिचार में जिन औषधियोका ग्रहण किया गया है उन के खाने से यद्यपि विराधना अधिक होती है तथापि उन से तृप्ति भी पूरी होती है परन्तु तुच्छ औषधियो के खाने से विरा-

धना तो बहुत अधिक होती है और तृप्ति बिलकुल थोडी होती है इस लिये तुच्छौपधिभक्षण को अपक्वौषधिभक्षण से अलग लिखा है।

अथवा जिन औषधियो के खाने से तृप्ति पूरी होती है उनको अचित्त बनाकर खाने से व्रतधारी श्रावकका व्रत मलीन नहीं होता है परन्तु तुच्छ औषधियो को अचित्त बनाकर लोलुपतावश खाने से भी श्रावकका व्रत दूषित हो जाता है अतः तुच्छ औषधियो को अचित्त बनाकर खाना भी व्रतधारी श्रावक के लिये उचित नहीं है यह बताने के लिये तुच्छौपधिभक्षण नामक अतिचार को अलग लिखा है। यद्यपि तुच्छ औषधियो को अचित्त बनाकर खाने से द्रव्य रूप विरति की रक्षा होती है तथापि इस से भावरूप विरतिका विनाश होता है इस लिये यह वर्जित है।

भोजन मे उपभोग परिभोग व्रत और उस के अतिचार बतादिये गये अब कर्म से उपभोगपरिभोगव्रत और उसके अतिचार बताये जाते है

अपने उपभोग और परिभोग को उपार्जन करने के लिये अत्यन्त सावद्य कर्मोका त्याग करके शेष कर्मोका आश्रय लेना कर्म से उपभोगपरिभोगप्रमाण व्रत कहलाता है। इस व्रत के १५ अतिचार होते हैं जैसे कि-(१) इगालकम्म, (२) वणकम्म (३) साडीकम्म, (४) भाडीकम्म (५) फोडीकम्म,

(६) दन्तवाणिज्ज (७) लक्खवाणिज्ज (८) रसवाणिज्ज (९) केसवाणिज्ज (१०) विसवाणिज्ज (११) जंतपीलणकम्म (१२) निल्लंछनकम्म (१३) दवग्गिदावणया (१४) सरदह-तलागसोसणया (१५) असईपोसणया।

कर्म से उपभोग परिभोग प्रमाण व्रत के ये १५ अति-चार हैं, ये कर्मादान कहे जाते हैं।

(१) (इंगालकर्म) लकडी जलाकर कोयला बना बनाकर बेंचना 'इंगालकम्म' कहलाता है। इस कार्य्य से छः काय के जीवोंकी हिंसा अधिक और लाभ थोडा होता है इस लिये यह कार्य्य बुरा है।

(२) (वनकर्म) जंगल खरीद कर और उस को कटवा कर लकडी बेंचने का धन्धा करना 'वनकर्म' कहलाता है। इस में हिंसा बहुत अधिक होती है इस लिये यह कार्य्य श्रावक के व्रत को दूषित करनेवाला है।

(३) (शाकटिक कर्म) (साडीकम्म) भाडा लेकर गाडी चलानेका रोजगार करना शाकटिक कर्म, या साडीकम्म कहा जाता है। इस में पशुओंका बन्ध वध और जीव हिंसा आदि पाप अधिक होता है इस लिये यह कार्य्य श्रावक के व्रतको मलीन करनेवाला है।

(४) (भाटीकम्म) अपने पशु आदि के द्वारा दूसरेका माल असबाब आदि ढोलाकर भाडा कमाना (भाडीकर्म) कह-

लाता है। अपने माल असबाबको दूसरे को भाडा देकर उस
के द्वारा कहीं रखवाना भाडोकर्म नहीं है।

(५) (फोडीकम्म) हल या कुदाल आदि के द्वारा पृथिवीको फोडकर मिट्टी पत्थर आदि को बेंचनेका धन्धा करना 'फोडीकर्म' कहलाता है। अथवा भाडा लेकर हल कुदाल आदि के द्वारा दूसरे की पृथिवी को खोदना फोडीकम्म कहलाता है।

(६) (दन्तवाणिज्य) दांतो को खरीदने और बेंचनेका व्यापार करना 'दन्तवाणिज्य' कहलाता है। हरिभद्रसूरिजीने इसका खुलासा इस प्रकार किया है-पशुओंको दाँत के लिये घात करनेवाले हिंसकोंको यदि पहले ही दाँतोंकी कीमत दे कर यह कहा जाय कि-"मुझको अमुक दिन इतने दाँतोकी आवश्यकता है" तो वे उस दिन उतने दाँत देने के लिये शीघ्र ही जङ्गली हाथी आदि पशुओंका घात कर डालते हैं इस लिये पहले ही दातोकी कीमत पशु हिंसकों को दे कर उन के द्वारा किसी नियत तिथिपर दात ले कर बिक्री करना दन्तवाणिज्य कर्मरूप कमादान है। परन्तु पहले ही दोतोकी कीमत न देकर भिराव आदि पशु घातको के पास पडे हुए पहले के दांतो को खरीदना और उन्हें बेंचना दन्तवाणिज्यरूप कमादान नहीं है। अतएव टीकाकारने कहा है कि-" पूर्वानीत क्रीणाति " अर्थात् पहले के पडे हुए दांतो को खरीदना और बेंचना कर्मादान नहीं है।

(७) (लाक्षावाणिज्य) चपडा खरीदना और बेंचना 'लाक्षावाणिज्य' कहलाता है।

चपडेमें जीव बहुत अधिक होते हैं अतः पहलेही चपडेकी कीमत दे देनेपर उन जीवोंका शीघ्रही वध हो जाता है इसलिये यह कार्य्य श्रावकके व्रतको दूषित करनेवाला है। परन्तु पहले सेही तयार किये हुए चपडेको खरीदना और बेंचना लाक्षावाणिज्य रूप अतिचार नहीं है।

(८) (रसवाणिज्य) मद्य खरीदना और बेंचना रसवाणिज्य कहलाता है। मद्यपानसे मरण, कलह, और वध आदि अनेकों अनर्थ उत्पन्न होते हैं इसलिये इसका क्रय विक्रय श्रावकोंके व्रतको दूषित करनेवाला है।

(९) (विषवाणिज्य) जिसके खानेसे या सूँघनेसे प्राणियोंकी मृत्यु हो जाती है ऐसे सँखिया आदि विषोंका क्रय विक्रय करना विषवाणिज्य कहलाता है। इस धन्धासे अनेकों प्राणियोंका घात हो जाता है इसलिये यह कर्म श्रावकोंके लिये वर्जित है।

(१०) (केशवाणिज्य) सुन्दर केशवाली दासियोंको खरीद कर अधिक मूल्यसे दूसरे देशोंमें बेंचनेका व्यापार करना केशवाणिज्य कहलाता है। इस कार्य्यसे बिचारी दासिया विदेशोंमें जाकर परतन्त्रतारूप बेडीमें फसकर बहुत दुःख भोगती हैं इस लिये यह कर्म बहुत निन्दित है।

(११) (यन्त्रपीडनकर्म) ईख और तिल आदिको यन्त्रोंके द्वारा पीडन करनेका व्यापार करना यन्त्रपीडनकर्म कहलाता है। इस कार्य्यसे भी अनेको प्राणियोकी हिंसा होती है इस लिये यह कर्म वर्जित है।

(१२) (निर्लाच्छनकर्म) बैल, भैंसा ऊँट और बकरा आदि प्राणियोको बधिया करना 'निर्लाछनकर्म' कहलाता है।

(१३) (दावाग्निदापनताकर्म) क्षेत्रकी उपजाऊ शक्तिकी वृद्धि करनेके लिये अथवा पृथिवीको साफ करनेके लिये दावाग्नि लगादेना 'दावाग्निदापनता' कर्म है। इस काय्यसे अनेको प्राणियोकी हिंसा होती है इसलिये यह कार्य्य निन्दित है।

(१४) (सरोहृदतडागपरिशोषणताकर्म) क्षेत्र बनाकर उसमें धान्य आदि उत्पन्न करनेके लिये तालाब और पोखरा आदिको शोषण करना 'सरोहृदतडागपरिशोषणता' कर्म है।

(१५) (असतीपोषणताकर्म) दुराचारिणी कुल्टा, और वेश्या आदि असती स्त्रियोका पालन करके भाडे पर उनके द्वारा व्यभिचार करानेका धन्धा करना 'असतीपोषणता कर्म' है ये ऊपर लिखे हुए १५ अतिचार कर्मादान कहलाते हैं। इन्हें श्रावक न स्वय करे और न दूसरेके द्वारा करावे और न करनेवालेको अच्छा माने। इन कर्मादानोंके सम्बन्धमें भगवती सूत्रमें यह पाठ आया है कि—" जे इमे समणो वासगा भवंति वेसिं नो कप्पंति इमाइ पणरसकम्मादाणाइ सय करेत्तएवा कारवेत्तएवा अण्ण समणुजाणेत्तएवा"

इति। अर्थात् श्रमणोपासक इन कर्मादानोको स्वय न करे और दूसरेसे न करावे तथा करनेवाले को अच्छा न जाने कोई मर्य्यादा रखकर कर्मादानोके सेवनका आदेश करते हैं परन्तु यह उनका अज्ञान है क्योकि मर्य्यादा रखकर अतिचारोके सेवनका कहीं भी विधान नहीं है किन्तु सर्वथा अतिचारोके त्यागका ही शास्त्र उपदेश करता है। ये कर्मादान ज्ञानावरणीय आदि उत्कट कर्मबन्धके कारण हैं इसलिये ये कर्मादान कहलाते हैं।

अतिचारोंके साथ सप्तम व्रत समाप्त हुआ।

(आठवां व्रत अनर्थदण्डवर्जन)

अपने क्षेत्र, गृह, धन, शरीर, और कुल परिवार तथा दासी दास आदिके लिये जो कार्य किये जाते हैं उनमें अनेको प्राणियोका दण्ड होता है वह दण्ड प्रयोजनवश किया जाता है इसलिये उसे अर्थदण्ड कहते है परन्तु प्रयोजन न होते हुए भी निरर्थक प्राणियोको दण्ड देना अनर्थदण्ड कहलाता है। जैसे हर्षित होकर वृक्ष आदिके ऊपर कुठारका प्रहार करना तथा कीडे मकोडे आदि प्राणियोको निरर्थक वध करना या सँताना अनर्थदण्ड कहलाता है इस अनर्थदण्डको सर्वथा त्याग देना 'अनर्थदण्डवर्जनव्रत' कहलाता है।

(अनर्थदण्डके चार भेद)

(१) अपध्यानाचरित (२) प्रमादाचरित (३) हिंसाप्रदान (४) पापकर्मोपदेश।

(१) आर्त तथा रौद्रध्यानके वशमें होकर बिना प्रयोजन किसी प्राणीको दण्ड देना 'अपध्यानाचरित' कहलाता है।

(२) प्रयोजनके बिना प्रमादवश बुरी कथा वार्ता आदि कहना तथा तेल और पानीके पात्रोंको बिना ढके रखना 'प्रमादाचरित' कहलाता है।

(३) हिंसाके साधन तलवार बर्छी आदि शस्त्रोंको बिना प्रयोजन किसीको देना 'हिंसाप्रदान' कहलाता है।

(४) बिना प्रयोजन किसीको पापकर्मका उपदेश करना, जैसेकि—"तुम क्षेत्रको जोतो और बछडेको दमन करो इत्यादि" पापकर्मोपदेश कहलाता है। इन चारोंही अनर्थदण्डोंका त्याग करना अनर्थदण्डवर्जनव्रतका स्वरूप है।

(अनर्थदण्डवर्जन व्रतके पाँच अतिचार)

(१) कन्दर्प (२) कौकुच्य (३) मौखर्य्य (४) संयुक्ताधिकरण (५) उपभोगपरिभोगातिरेक।

(१) कामवासनाकी प्रबलतासे, मोहके उत्पादक हास्ययुक्त व्यङ्ग्यामिश्रित शब्द किसीको कहना 'कन्दर्प' कहलाता है। यदि सरलचित्तसे चित्तविनोदके लिये हास्य उत्पादक शब्दोंका प्रयोग कियाजाय तो वह अतिचार नहीं है।

(२) आंख, नाक, मुख, भृकुटि आदि अपने अङ्गोंको विकृत करके भाँड विदूषक आदिकी तरह हास्य उत्पन्न करना 'कौकुच्य' कहलाता है।

(३) बिना अवसर धृष्टतापूर्वक असत्य भाषण करना 'मौखर्य' है।

पूर्वोक्त कन्दर्प नामक अतिचार, प्रमादाचरित अनर्थ-दण्डविरमण व्रतका अतिचार है। जिस श्रावकने प्रमादाचरित अनर्थदण्डका त्याग किया है वह यदि भूलसे कामाग्निका उत्तेजक हास्यजनक शब्दोंका प्रयोग करे अथवा ऐसे शब्दके प्रयोगमें उसका अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार हो जाय तो उसके उक्त व्रतमें अतिचार (दोष) उत्पन्न होता है परन्तु सरल चित्तसे चित्तविनोदार्थ हास्यजनक शब्दोंका प्रयोग करना अतिचार नहीं है।

कौकुच्य नामक अतिचार भी प्रमादाचरित अनर्थदण्ड विरमण व्रतका ही अतिचार है। यह भी बिना प्रयोजन किया हुआ ही अतिचार माना जाता है परन्तु प्रयोजन वश इसे करना अतिचार नहीं है। 'मौखर्य' नामक अतिचार प्रमादाचरित अनर्थदण्ड विरमण, तथा पापकर्मोपदेश विरमण, इन दोनों व्रतोंका अतिचार है। यह भी भूलसे किया हुआ तथा अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार हो जाने पर ही अतिचार माना जाता है परन्तु जान बूझकर करना नहीं क्योंकि जान बूझकर मौखर्यका सेवन करना अनाचार माना जाता है।

(४) बिना प्रयोजन लोढ़ी शिला और ओखल मुशल आदि कूटने तथा पीसनेके साधनोंको सङ्ग्रह करना सयुक्ताधि-

मरण कहलाता है। यह हिंसा महान विरमण व्रतका अतिचार है। जिस श्रावकने बिना प्रयोजन किसीको तल्वार और बर्छी आदि शस्त्रोंको न देनेका व्रत धारण किया है वह यदि बिना प्रयोजन हिंसाके साधन लोढी सिल्ला आदि वस्तुओंको संग्रह करे तो उसके व्रतमें दोष उत्पन्न होता है अतः यह कार्य अतिचार माना जाता है।

(५) (उपभोगपरिभोगातिरेक) जितने अन्न जल और वस्त्र आदिसे अपना तथा अपने सम्बन्धियोंका निर्वाह हो जाय उससे अधिक अन्न जल आदिका उपयोग करना 'उपभोग परिभोगातिरेक' कहलाता है। जैसे पेट भरा रहने पर भी लोलुपतावश फिर भोजन करना तथा एकवार स्नान करनेसे शरीरकी स्वच्छता हो जाने पर भी फिर स्नान करना उपभोग परिभोगातिरेक है। यह प्रमादाचरित अनर्थदण्ड विरमण व्रतका अतिचार है। जिस श्रावकने प्रमादाचरित अनर्थदण्डका त्याग किया है वह यदि भूलसे बिना प्रयोजन जलादिकायोंकी हिंसा करे तो उसके उक्त व्रतमें अतिचार उत्पन्न होता है। परन्तु प्रयोजनवश जलादि कायोंमें उक्त श्रावककी प्रवृत्ति अतिचार नहीं है क्योंकि उसने अनर्थ दण्डकाही त्याग किया है अर्थ दण्डका नहीं।

(अतिचार सहित आठवाँ व्रत समाप्त)

## अब शिक्षाव्रतका वर्णन किया जाता है

शिक्षाव्रतके चार भेद होते हैं। (१) सामायक व्रत (२) देशावकाशिक व्रत (३) पोषधोपवास (४) अतिथिसंविभाग।

(१) जो पुरुष रागद्वेषको त्याग कर समस्त जीवोंको अपने समान देखता है उसको नये नये ज्ञान दर्शन और चारित्रके पर्यायोंकी प्राप्ति होती है। ज्ञान दर्शन और चारित्रके पर्याय, चिन्तामणि और कल्पवृक्षसे भी अधिक जीवोंको सुख उत्पन्न करते हैं अतः समस्त जीवोंको आत्मस्वरूप देखने रूप समताकी प्राप्तिके लिये श्रावक जो अनुष्ठान या क्रिया करता है उसको 'सामायक व्रत' कहते है।

समस्त प्राणियोंको आत्मतुल्य दर्शनरूप समताकी प्राप्तिके लिये सावद्य योगोंका त्याग और निरवद्य योगोंका सेवन करना आवश्यक है। पापको उत्पन्न करनेवाले कायिक वाचिक और मानसिक व्यापारोंको नियत समयतक रोकना 'सावद्ययोगवर्जन' है और दोषरहित होकर शुद्ध क्रियाओंका सेवन करना निरवद्ययोगपरिसेवन कहलाता है। समताकी प्राप्तिके लिये इन दोनों कार्य्योंकी समानरूपसे आवश्यकता होती है इस लिये सावद्य योगोंके त्यागके समान ही निरवद्य योगोंके अनुष्ठानका ध्यान रखना भी व्रतधारी का कर्तव्य समझना चाहिये।

### (सामायक करनेकी विधि)

साधुओंके निकट, अपने घर पर, पौषध शालामें उद्यान-

गृहमें अथवा जिस किसी निर्विकार स्थानमें व्यापाररहित और स्थिरचित्त होकर श्रावकोंको सामायक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। जो लोग साधुओंके निकट जाकर सामायक करते हैं वे साधुओंको मन वचन और कायसे नमस्कार करके सामायक करनेकी आज्ञा मांगें। साधुओंसे आज्ञा लेकर ऐर्य्यापथिक और कायोत्सर्गादि विधिका आचरण करके "करेमि भंते! सामाइय, सावज्ज जोग पचक्खामि जाव नियम पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि, नकारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भन्ते! पडिकमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि" इस पाठको पढ़कर जितने मुहूर्तकी इच्छा हो उतनेका सामायक स्वीकार करें। सामायक स्वीकार करके श्रावक मुनिको वन्दना करें और पांच सुमति तथा तीन गुप्तियोंकी आराधना करते हुए मुनियोंके समान व्यवहार करें। वे चलते समय ईर्य्यासमिति और बोलते समय सावद्य भाषाके त्यागका ध्यान रखें। एवं तृण काष्ठ तथा अन्य किसी वस्तुका प्रयोजन उपस्थित होनेपर एषणा समितिसे परीक्षा करके उनका उपयोग करें। तथा वस्त्र और पात्र आदिका ग्रहण एवं निक्षेप आदान और निक्षेप समितिके द्वारा करें। यदि बन सके तो सामायकके समय कफ आदिका त्याग न करें परन्तु कफ त्यागे बिना न बनता हो तो पांचवीं समितिके द्वारा स्थानको यत्न पूर्वक देखकर और प्रमार्जन करके कफका त्याग करें। सामायक करता हुआ श्रावक तीन गुप्तियोंके द्वारा

अपने मन वचन और कायको स्थिर रखें। तथा स्वाध्याय ध्यान और साधुओंके साथ धार्मिक चर्चा करते हुए निर्मल सामायक पालनेकी चेष्टा करें। अपने सामायकको निर्मल बनानेके लिये निम्न लिखित बातोसे बचना आवश्यक है।

जैसे कि–कोई कर्जा देनेवाला अपने रकम की तकादा करने वाला हो तो उसके भय से सामायक कर के बैठ जाना अथवा किसी के साथ विश्वासघात करने के लिये अथवा रोगी मनुष्यकी सेवा शुश्रूषा के भय से अथवा झगडा आदि से बचने के लिये सामायक का ढोग रचकर सामायक के आसनपर बैठ जाना ये सब बातें वर्जित हैं इस लिये इन बातोको वर्जित करके श्रावको को निर्मल सामायकका पालन करना चाहिये।

सामायक करनेकी विधि बतादी गई अब यहा यह सन्देह होता है कि–श्रावक सामायक करते समय जब कि साधुओंके समान व्यवहार करता है तब वह तीन करण और तीन योगोसे समस्त सावद्य कर्मोका त्याग क्यो नहीं कर देता है? तो इसका समाधान यह है कि–गृहस्थाश्रम के कार्य्योका निर्वाह करनेवाले श्रावको के लिये समस्त सावद्य कर्मो के अनुमोदनका त्याग सम्भव नहीं है इस लिये वे अनुमोदनको छोडकर दो करणो से समस्त सावद्य कर्मोका त्याग करते हैं परन्तु साधु गृहस्थ नहीं हैं इस लिये वे अनुमोदन से भी समस्त

सावद्य व्यापारोंका त्याग कर देते हैं। साधु और सामायक में बैठे हुए गृहस्थोंका भेद भी इतना ही है परन्तु श्रावक सामायक के समय अधिक अंश से साधु के समान हो जाता है इस लिये सामायक में स्थित श्रावकको साधु के समान कहा है। इस विषय में शास्त्रीय गाथा यह है–" सामाइयमि कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा। एएण कारणेण बहुसो सामाइय कुज्जा। इसका अर्थ यह है कि–श्रावक सामायक करते समय साधु के समान होजाता है इस लिये श्रावक बहुत बार सामायक करे। इस गाथामें सामायकमें स्थित श्रावक को जो साधु के समान कहा है उसका आशय यही है कि सामायक के समय श्रावक बहुत अंशो में साधु के समान हो जाता है परन्तु वह सर्वथा साधु ही हो जाता है यह भाव नहीं है क्यो कि–ऐसा होनेपर साधु और श्रावकका भेद नहीं हो सकता है।

( सामायक व्रत के पाँच अतिचार )

(१) मनोदुष्प्रणिधान (२) वागूदुष्प्रणिधान (३) कायदुष्प्रणिधान (४) सामायकस्मृत्यकरण (५) सामायकानवस्थित करण। ये पाच सामायक व्रत के अतिचार हैं।

(१) सामायक करते समय सासारिक विषयोंका मनसे चिन्तन करना 'मनोदुष्प्रणिधान' कहलाता है।

(२) सामायक के समय निष्ठुर और सावद्य भाषा बोलना वागूदुष्प्रणिधान है।

(३) सामायक के समय रजोहरण आदि के द्वारा प्रमार्जित न की हुई तथा न देखी हुई पृथिवी में अपने हाथ पैर आदि अङ्गोंको रखना कायदुष्पणिधान कहलाता है।

(४) जिस घड़ी या वेला में सामायक ग्रहण किया हो उसे स्मरण न रखना सामायकस्मृत्यकरण कहलाता है।

(५) कभी करना और कभी न करना तथा उपेक्षा बुद्धिसे करना एव सामयककी अवधि पूर्ण हुए विनाही बीचमें उठ जाना 'सामायकानवस्थितकरण' कहलाता है।

इन अतिचारोंमें मनोदुष्पणिधान वाग्दुष्पणिधान और कायदुष्पणिधान रूप अतिचार अनाभोग, अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार होनेसे होते हैं और पीछे के दो अधिक प्रमादके कारण उत्पन्न होते हैं।

(दशवाँ देशावकाशिक व्रत)

छट्ठे व्रतके वर्णनमें दिग्व्रतका स्वरूप बताया गया है उस दिग्व्रतको सक्षेप करना देशावकाशिक व्रत है। जैसे किसी श्रावकने जीवनभरके लिये अथवा वर्ष और चातुर्मास्य भरके लिये चारो दिशाओंमें आने जाने के लिये एक हजार या पाँच सौ कोशकी मर्य्यादा नियत की है वह श्रावक एक दिन, एक प्रहर या एक मुहूर्त के लिये अपनी उक्त मर्य्यादा के कोशोंको कम करदे तो यह देशावकाशिक व्रत है। इसी तरह स्थूलप्राणातिपातविरमण आदि व्रतोंका भी दिन प्रहर और

मुहूर्त आदिके प्रमाणसे संकोच करना देशावकाशिक व्रत है। जैसे जिस श्रावकने अपराधी प्राणीको न मारनेकी प्रतिज्ञा नहीं की है यदि वह एक दिन एक प्रहर या एक मुहूर्त तक या इच्छानुसार वर्ष मासादि तक अपराधीको भी न मारनेकी प्रतिज्ञा करे तो यह देशावकाशिक व्रत है। यद्यपि मूल पाठमें दिग्व्रतोंको सकोच करना देशावकाशिक व्रत कहा गया है तथापि समस्त अनुव्रतोंको सकोच करना देशावकाशिक व्रत समझना चाहिये क्योंकि मूलपाठ सभी व्रतोंके सकोचका उपलक्षण है।

(देशावकाशिक व्रतके पाँच अतिचार)

(१) आनयनप्रयोग (२) प्रेष्यवलप्रयोग (३) शब्दानुपात (४) रूपानुपात (५) बहिःपुद्गलप्रक्षेप। ये पाच देशावकाशिक व्रतके अतिचार हैं।

(१) व्रतधारी श्रावकने अपने आने जाने के लिये जितने कोश आदिकी मर्य्यादा नियत की है उससे बाहर के पदार्थों को सन्देश भेजकर किसी के द्वारा मँगाना 'आनयनप्रयोग' कहलाता है।

(२) नियत की हुई मर्य्यादासे बाहरके कार्य्योको नौकर आदि के द्वारा कराना प्रेष्यवल प्रयोग है।

(३) नियतकी हुई अवधि से बाहरका कार्य्य उपस्थित होने पर खाँसी या छींक के द्वारा अपने पड़ोसी आदिको

बोधित करके अपने कार्य्य के सम्बन्ध में पडोसी को सुनाकर कोई बात कहना 'शब्दानुपात' कहलाता है।

(४) नियत की हुई अवधिसे बाहरका कार्य्य उपस्थित होनेपर अपने कार्य्य की सिद्धि के लिये दूसरे को अपना शरीर आदि दिखाना 'रूपानुपात' है।

(५) नियत की हुई अवधिसे बाहरका कार्य्य उपस्थित होनेपर उसकी सिद्धि के लिये भाठा आदि फेंक कर दूसरे को अपना अभिप्राय समझाना 'बहिःपुद्गलप्रक्षेप' कहलाता है।

देशावकाशिक व्रतको स्वीकार करने का प्रयोजन यह है कि नियत अवधिसे बाहरके स्थानो में अपना आना जाना रुक जाय और आना जाना रुक जानेसे बाहरके जीवे की विराधना रुक जाय, परन्तु स्वय न जाकर यदि दूसरे पुरुपको बाहर के स्थानो में श्रावक भेजे तो उसका उक्त उद्देश्य सफल नहा होता किन्तु वह व्यर्थ हो जाता है क्योंकि जो पुरुप श्रावक के द्वारा भेजा जाता है उस के द्वारा अवधिसे बाहरके जीवोकी विराधना होही जाती है वह रुकती नहीं है बल्कि अपने जानेसे जितनी विराधना होती उससे अधिक अनिपुण पुरुप को भेजनेसे होती है, इससे अच्छा तो यही था कि दूसरे को न भेजकर स्वय जाते क्योंकि स्वय जाते तो देख भाल कर चलते, जिससे जीवों की विराधना कम होती

परन्तु दूसरे को भेजने से वह और अधिक हुई फिर देशा वकाशिक व्रतको स्वीकार करने का प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ ? अतः यह कार्य्य बहुतही बुरा है।

आजकल बहुत से लोग दूसरों के द्वारा कार्य्य करानेमें अपने को पापसे बचा हुआ समझते हैं और कोई अल्प पाप लगना मानते हैं परन्तु यह उनकी भूल है क्योंकि अविवेकी पुरुष के द्वारा कार्य्य कराना अपने करने से अधिक पापका कारण होता है यह इस देशावकाशिक व्रत के अतिचारो से ज्ञात होता है अतः श्रावको को इस पर पूरा ध्यान रखना चाहिये।

( दशवाँ व्रत और उसके अतिचार कह गये। )

(११ वाँ पौषधोपवास व्रत)

इस व्रतके शास्त्रमें दो भेद पाये जाते हैं एक पौषधव्रत और दूसरा पौषधोपवास व्रत। श्रावक के द्वारा अपने सहधर्मी भाईयोको दान, सम्मान और भोजन आदिसे सन्तुष्ट किया जाना पौषध व्रत है तथा अष्टमी चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा आदि तिथियो में उपवास करना पौषधोपवास व्रत है। अथवा अष्टमी चतुर्दशी और अमावाश्या आदि तिथियाँ धर्मको पुष्ट करनेवाली हैं इस लिये ये तिथियाँ पौषध कहलाती हैं इन तिथियो में दोषो को छोड़कर आहार परित्याग आदि गुणके साथ निवास करना 'पौषधोपवासव्रत' कहलाता है अतएव

शास्त्रके मर्मज्ञ विद्वानने कहा है कि "उपावृत्तस्य दोषेभ्यः सम्यग्वासो गुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम्" अर्थात् दोषोंको छोड़कर गुणो के साथ निवास करना उपवास कहलाता है परन्तु केवल शरीरको शोषण करना नहीं। इसका विवेचन भगवती सूत्र श १२ उ १ के मूल और टीकामें इस प्रकार पाया जाता है। टीका-"इह किल पौषध पर्वदिनानुष्ठान, तच्च द्वेधा इष्टजनभोजनदानादि रूप माहारपौषधरूपश्च। तत्र शङ्खः इष्टजनभोजनदानरूप पौषध कर्तुकाम, सन् यदुक्तवास्तदर्शयतेदमुक्तम्" "तएणं अम्हे त विउल असणपाणखाइमसाइम आसाएमाणा विस्सा-एमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसह परिजा-गरमाणा विहरिस्सामि"। इसका अर्थ यह है-पर्व दिनमें किया जानेवाला शुभ अनुष्ठान पौषध कहलाता है वह दो तर-हका है अपने सहधर्मी भाइयोको भोजन देना आदि पहला व्रत है और आहार आदिका त्याग करना दूसरा व्रत है। इनमें प्रथम व्रतको करनेकी इच्छासे जो शख श्रावकने कहा है उसे बताने के लिये शास्त्रकार लिखते हैं "तएण" इत्यादि। इसका अर्थ यह है कि-शख श्रावक अपने सहधर्मी भाइयोसे कहता है कि-हम विपुल अशन पान खाद्य और स्वाद्य पदा-र्थोंको खाते पीते और परस्पर बाँटते हुए पक्खी पौषा करते हुए तथा धर्म जागरणा करते हुए विचरेंगें। यह ११ वें व्रतके प्रथम भेदका स्वरूप है। दूसरेका स्वरूप ऊपर बता...

(पौषधोपवास व्रतके चार भेद)

(१) आहारपौषध (२) शरीरसत्कारपौषध (३) ब्रह्मचर्य्यपौषध (४) अव्यापारपौषध। ये चार पौषधोपवास व्रतके भेद है, ये चारों दो दो प्रकारके होते हैं देशसे और सर्वसे। जो किसी एक अशसे किया जाता है वह देशसे पौषधोपवास कहलाता है और जो सब अशोंसे किया जाता है वह सर्वसे पौषधोपवास व्रत है। जैसे कि—

(१) आहार पौषध में घृत आदि विगयोका त्याग करना अथवा आयंबिल आदि करना देशसे आहार पौषध है और एक दिन तथा एक रात तक चारो प्रकार के आहारोंका त्याग करना सर्वसे आहार पौषध व्रत है।

(२) स्नान, उबटन, तैलाभ्यङ्ग, चन्दनादि लेप, और गन्ध ताम्बूल आदि पदार्थो में से किसी एक या दोका त्याग करना देशसे 'शरीरसत्कारपोपध' है और एक दिन तथा एक रातके लिये इन सभी पदार्थोका त्याग करना सर्वसे 'शरीर-सत्कारपौषध' व्रत है।

वीर्य्यकी रक्षा करना ब्रह्मचर्य्य कहलाता है। वीर्य्यकी रक्षा करने के लिये स्त्री आदि का दिनभर या रात भर के लिये त्याग करना देशसे 'ब्रह्मचर्य्यपोषध' है और एक दिन रात के लिये स्त्री आदि का त्याग करना सर्वसे ब्रह्मचर्य पौषध है।

सावद्य व्यापारोका त्याग करना 'अव्यापार' पौषध कहलाता है। मैं अमुक व्यापार करूगा और अमुक व्यापार न

करगा" ऐसा नियम करके कुछ व्यापारोंको त्याग देना 'देश' से 'अव्यापार' पौषध है और हल, गाडी, तथा दूसरे सभी कार्यों को त्याग करना सर्वसे 'अव्यापार'पौषध है।

पूर्वोक्त चारो ही पौषधोपवासो का सर्वसे आचरण करना पूर्णपौषधोपवास समझा जाता है।

(पौषधोपवास व्रतके पाँच अतिचार)

(१) अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तार।

(२) अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तार।

(३) अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितउच्चारप्रस्रवणभूमि।

(४) अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितउच्चारप्रस्रवणभूमि।

(५) पौषधसम्यगननुपालन।

ये पाच पौषधोपवास व्रतके अतिचार हैं।

(१) पौषधोपवास व्रतको ग्रहण करके अपनी शय्या और बैठनेके आसन कम्बल आदि को अच्छीतरह सावधानी के साथ देखलेना चाहिये जिससे किसी प्राणी की विराधना न हो, परन्तु ऐसा न करना यानी अपनी शय्या और कम्बल आदि आसनो को बिलकुल न देखना अथवा चञ्चलतासे देखना 'अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तार' कहलाता है।

(२) अपनी शय्या या आसनको सर्वथा परिमार्जन न करना अथवा चञ्चलमनसे परिमार्जन करना 'अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तार' कहलाता है।

(३) उचार, थूक, और कफ आदि को जिस भूमि में डाल उस भूमि को बिल्कुल न देखना या चञ्चलचित्त से देखना 'अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितउचारप्रस्रवणभूमि' कहलाता है।

(४) उचार प्रस्रवण, कफ, थूक, आदि को बिल्कुल प्रमार्जन न की हुई भूमिमें डालना, अथवा चञ्चल मनसे प्रमार्जन की हुई भूमि में डालना 'अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितउचारप्रस्रवण भूमि' नामक अतिचार है।

(५) शास्त्रोक्त रीतिसे पौषध व्रतका पालन न करना तथा पौषध व्रतके समय आहार, शरीर सत्कार, अब्रह्म और विविध सावद्य व्यापारोंकी मन में इच्छा करना 'पौषधसम्यगननुपालन' कहलाता है।

(अतिचारों के सहित ग्यारहवाँ व्रत समाप्त)

(बारहवाँ व्रत अतिथि संविभाग)

भोजनके समय भोजनके लिये अपने घर पर आये हुए पुरुष अतिथि कहलाते हैं। उन अतिथियों को देने के लिये, शास्त्रोक्त उद्योग से अपने वर्णधर्मानुसार उपार्जन किये हुए और अतिथियों के कल्पके योग्य अन्न और पान आदि को

विभाग करना 'अतिथिसंविभाग' व्रत कहलाता है। अतिथियोंमें गृहस्थोंका मुख्य अतिथि साधु होते हैं परन्तु गौण अतिथि दूसरेभी होते हैं।

(बारहवें व्रतके पांच अतिचार)

(१) सचित्तनिक्षेपण (२) सचित्तपिधान (३) कालातिक्रम (४) परव्यपदेश (५) मात्सर्य। ये पाँच बारहवें व्रतके अतिचार होते हैं।

(१) जिसमें सचित्त अन्न गेहूं चना आदि पडा हो ऐसे अचित्त अन्न को साधु लोग नहीं लेते हैं यह जानकर भी न देने की इच्छासे अचित्त पदार्थ में कपटपूर्वक सचित्त पदार्थ डाल देना 'सचित्तनिक्षेप' कहलाता है।

(२) साधुको न देनेकी इच्छासे कपटपूर्वक सचित्त फल आदिके द्वारा अचित्त पदार्थको ढक देना "सचित्तपिधान" कहलाता है।

(३) "साधुलोग मुझको भिक्षा देनेवाला समझलें और अपना अन्नभी बचजाय" इस भावसे प्रेरित होकर साधुओंके भोजनकी वेलाको टालकर यानी साधुओंके भोजनकी वेलासे पहले या पीछे भिक्षा देनेके लिये तत्पर होना 'कालातिक्रम' कहलाता है।

(४) अपने अन्नको दूसरेका बताकर साधुके मनमें यह

भाव उत्पन्न करना कि—"यदि यह अन्न इसका होता तो यह अवश्य मुझको भिक्षा देता" 'परव्यपदेश' कहलाता है।

अथवा भिक्षा देते समय यह कहना कि—"इस भिक्षासे मेरी माताको पुण्य बन्ध हो" इत्यादि "परव्यपदेश" कहलाता है।

(५) किसीके साथ स्पर्धा करके साधुको भिक्षा देना जैसे कि—"अमुक व्यक्तिने साधु को अमुक वस्तु दी है तो मैं उससे कम नहीं हूँ इसलिये मैं भी साधुको अमुक वस्तु दूंगा" ऐसा विचार कर साधु को भिक्षा देना "मात्सर्य" नामक अतिचार है।

---

( बारह व्रत और उसके अतिचार कहे गये। )

---

## उपसंहार

इस जगत्‌में सम्यक्त्वरूपी रत्न बड़ा दुर्लभ है इसे भाग्यवान् पुरुष ही प्राप्त करता है। पूर्वोक्त बारह व्रतोंका आधार सम्यक्त्व ही है, इसके बिना बारह व्रत बिना जडके वृक्षकी तरह क्षणभरभी नहीं ठहरते अतः बारह व्रत धारण करनेवाले श्रावकोंको पहले सम्यक्त्वरूपी रत्नको प्राप्त करना और उसे निरतिचार पालन करना आवश्यक है यह पहले कहा जा चुका है फिरभी सम्यक्त्वकी अत्यावश्यकता प्रकट करनेके लिये यहा भी कुछ लिखा जाता है। सम्यक्त्वको धारण और उसका पालन करनेके लिये उसका लक्षण जाननेकी आवश्यकता है अत. सम्यक्त्वका लक्षण लिखा जाता है—उमास्वातिने अपने तत्त्वार्थ सूत्र नामक ग्रन्थमें सम्यक्त्वका लक्षण यह लिखा है कि— "प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वम्"। इसका अर्थ यह है कि—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाच इन्द्रियोंके भोगोंसे अलग रहना, तथा संसारको दुःखका कारण समझकर उससे डरना, प्रत्युपकारकी इच्छाके बिना दुःखी प्राणियोंको दुःखसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना, तथा शास्त्रोक्त आत्मादि पदार्थोंमें विश्वास रखना एवं पुत्र, स्त्री, धन, और गृह आदिमें अत्यन्त प्रेम न रखना सम्यक्त्वके लक्षण हैं। इन पाच वस्तुओंमेंसे एक या अनेककी प्राप्ति होने पर सम्यक्त्वकी प्राप्ति समझनी चाहिये। जिस पुरुषने सम्यक्त्वकी प्राप्ति करली है उसे सदा प्रमादरहित होकर अतिचारोंका त्याग और जिनभाषित शास्त्रोंका श्रवण और ...

करना चाहिये। इस प्रकार शास्त्रानुसार बारह व्रतोंका पालन करते हुए श्रावकको यदि मरण समय निकट में आजाय अथवा किसी उपसर्गकी प्राप्ति हो, तो संथारा और सलेखना धारण करना चाहिये। संथारा और सलेखनाके धारण करनेकी विधि शास्त्रमें यह लिखी है—

किसी प्रकारके उपसर्गकी प्राप्ति होनेपर श्रावक भूमिको प्रमार्जित करके उसके ऊपर पद्मादि आसनोंसे पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठे। पश्चात् अरिहन्त, सिद्ध, और धर्माचार्य्य को नमस्कार करके अठारह पापाचार आहार और शरीर आदिमें ममता को आगार के साथ त्याग करे यदि वह उपसर्ग न टले तो जीवन पर्यन्त और टल जाय तो नहीं इस प्रकार शर्तके साथ प्रत्याख्यान करना आगारके साथ प्रत्याख्यान कहलाता है। इसी प्रत्याख्यानको 'सागारिक अनशन' कहते हैं। यह प्रत्याख्यान उपसर्गकी प्राप्तिके समय किया जाता है। परन्तु मरणकाल उपस्थित होनेपर आगाररहित प्रत्याख्यान इस प्रकार बताया गया है—

जो श्रावक जीवनभरके लिये आगाररहित अनशन व्रत धारण करना चाहता है उसको पहले अपने शरीरको तथा कषायोंको जघन्य छः मास तक और उत्कृष्ट बारह वर्षतक सलेखनाके द्वारा दुर्बल करना चाहिये। इसके पश्चात् पौषधशाला अथवा किसी उद्यानगृह आदि एकान्त स्थानमें जाकर उस स्थानको विधिपूर्वक प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके उसके ऊपर दर्भ आदिके आसनको बिछाकर पूर्वाभिमुख या उत्तरा-

निवृत्त होकर पद्मासन आदि आसनोंसे बैठकर अरिहन्त, सिद्ध और आचार्योंको नमस्कार करके चार प्रकारके आहार तथा अठारह प्रकारके पापोंको तीन करण और तीन योगोंसे प्रत्याख्यान करना चाहिये।

प्रत्याख्यान करनेके पश्चात् संथारा संलेखनाके पाँच अतिचारोंसे वर्जित करते हुए समाधिपूर्वक अपने शेष कालको व्यतीत करना चाहिये।

(संथारा संलेखनाके पाँच अतिचार)

(१) इहलोकाशसाप्रयोग (२) परलोकाशसाप्रयोग (३) जीविताशसाप्रयोग (४) मरणाशसाप्रयोग (५) भोगाशसाप्रयोग।

(१) मरनेके पश्चात् इस लोकमें फिर जन्म लेकर राजा, राजमन्त्री, सेठ और साहूकार आदि बननेकी कामना करना 'इहलोकाशसाप्रयोग' कहलाता है।

(२) मरनेके पश्चात् अपनी तपस्याके प्रभावसे इन्द्रादि देव होनेकी कामना करना 'परलोकाशसाप्रयोग' कहलाता है।

(३) संथारा लेनेके पश्चात् दूसरे लोगोंके द्वारा अपनी पूजा प्रतिष्ठाको देखकर पूजा प्रतिष्ठा पानेके लिये अधिक दिन तक जीनेकी इच्छा करना 'जीविताशसाप्रयोग' कहलाता है।

(४) संथारा लेनेके पश्चात् अपनी पूजा प्रतिष्ठा न देखकर शीघ्र मरजानेकी इच्छा करना 'मरणाशसाप्रयोग' कहलाता है।

(५) मरनेके पश्चात् फिर जन्म लेकर चक्रवर्ती आदिके भोगोंकी इच्छा करना 'भोगाशसाप्रयोग' कहलाता है।

# नोट्स

श्रावकों के बारह व्रत –

१ स्थूलप्राणातिपातविरमण – स्थूल प्राणियों की हिंसा का त्याग करना

२ स्थूल मृषावाद विरमण – स्थूल वस्तु के विषय में दुष्ट अध्यवसाय से झूठ नहीं बोलना

3 अदत्तादानविरमण – वस्तु के स्वामी की आज्ञा के बिना उसकी वस्तु को न लेना

४ परदारविरमण – परस्त्री गमन न करना और अपनी विवाहिता स्त्री में संतोष रखना

५ इच्छापरिमाण व्रत – सचेतन और अचेतन वस्तुओं के परिग्रह की सीमा निर्धारित करना

६ दिग्व्रत – किसी भी दिशा में जाने, आने या किसी को भेजने की दूरी संबंधी मर्यादा बनाना

७ उपभोगपरिभोग व्रत

नोट्स